योगी का आत्म-चरित्र

(३९ वर्ष की अज्ञात जीवनी)

संस्कृत में प्रवक्ता

योगेश्वर महर्षि दयानन्द सरस्वती

संस्कृत से बंगला में कराने वाले

महर्षि देवेद्रनाथ ठाकुर, पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, श्री ब्रह्मानन्द, श्री केशव चन्द्रसेन

आदि बंगाल के मूर्धन्य विद्वद्वृन्द

बंगाल में लेखक

संस्कृत-बंगला-विशेषज्ञ मण्डल

हिन्दी अनुवादक तथा हस्त लेख अन्वेषक

श्री पं० दीनबन्धु शास्त्री बी० ए० आचार्य

गवेषक पोषक तथा ऋषि यात्रा-यात्री

श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती योगी

अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, नैनीताल

सा० मन्त्री सार्वदेशिक आर्यसन्न्यासी वानप्रस्थ मण्डल-ज्वालापुर

महामहिम-पातञ्जल योग साधना संघ

प्रकाशक

पातञ्जल योग साधना संघ

वैदिक भक्ति साधना आश्रम,

रोहतक

मूल्य १५·००

प्रकाशक, गवेषक, अनुवादक का समस्त लाभांश महामहिम के आदेशानुसार
योग साहित्य प्रकाशन एवं योग प्रसार में व्यय होता है

सर्वाधिकार महामहिम सच्चिदानन्द योगी के आधीन हैं

वितरक

१. प्रकाशक वैदिक साधना आश्रम, आर्य नगर, रोहतक
२. श्री कल्याण स्वरूप जी साधक
आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर, सहारनपुर
३. श्री बालकृष्ण जी अग्रवाल, यौगिक संघ,
११ नं० पोलक स्ट्रीट, कलकत्ता-१
४. रोशन बुक डिपो, नई सड़क, देहली,
५. श्रीमती प्रतिभा किशोर, १३९ डी०
कमला नगर, देहली-७
६. गुरु विरजानन्द स्मारकन्यास, करतारपुर, पंजाब।

मुद्रक :
अशोक प्रेस,
नई सड़क, दिल्ली-६

हार्दम

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो' न मेधया, न बहुना श्रुतेन ।
यमेष वृणुते तेन लभ्य, स्तस्मै तनूते नूँस्वाम् ॥उपनिषद

आत्मा परमात्मा का ज्ञान प्रवचनों से प्राप्त होगा नहीं, न तर्क से, न वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-सुनने से । जिन पवित्र आत्मा को भगवान् अपना लेते हैं, उसी को प्राप्त होता है । भगवान् उसके लिए अपना स्वरुप व्यक्त कर देते हैं ।

नैषा मतिस्तर्केण आप्नेया'

आत्म ज्ञान तर्क से होने वाला नहीं है ।

तर्कस्याप्रतिष्ठानम्—वात्स्यायन भाष्य

तर्क की प्रतिष्ठा नहीं । अंतिम निर्णय नहीं ।

इस लिए अनार्ष ज्ञान के उपाधिधारी, डाक्टर,एम.ए प्रोफेसर, आचार्य, शास्त्री, तीर्थ, स्वयंभू ऋषि, नेता, राजसी सन्यासी आर्षज्ञान को समझ नहीं पाते हैं, प्रसार तो बहुत आगे की स्थिति है । वेतनोपजीवी धर्म के वकील भी धर्मप्रसार नहीं कर सकते हैं । वे केवल रोचक पाचक प्रसन्न कर चूर्ण ही बेच पाते हैं, पौष्टिक आहार नहीं । यहि कारण है कि दयानन्दानुयायी भी न वेदका गहन अध्ययन स्वयं कर पाते हैं, न बालकों करा पाते हैं । प्रभु प्राप्ति को एक मात्रसाधन योगाभ्यास की तो रुचि ही न गण्य है । आर्षपाठ विधि और शास्त्रों का अध्ययन जनता से समाप्तसा है । समाज बर्गहीन बन गया है । गुण कर्म स्वभाव की वर्ण व्यवस्था केवल सत्यार्थ प्रकाश को ही शोभित कर रही है । आश्रम व्यवस्था भी वर्तमान युगानपेक्षित हो गई है, सारा जीवन गृहस्थ को ही अर्पित कर दिया गया है । राजनीति वर्णाश्रम धर्म की स्थापना के लिये थी । वह भी केवल अधिकार शासन या धन बटोरने को रह गई है । नेतृ वर्ग तो इसमें बुरी तरह फँसा है । अब कुछ सन्न्यास की होड सी चली लगती है । पर बिना

वानप्रस्थ में या प्रथम ब्रह्मचर्य में ही योग सिद्ध किये सन्न्यास कृतकार्य नहीं हो सकता। गेरुये रंग में भी अधिकार पैसे की खैंचा तानी और दल बन्दी रही तो ऐसे सन्न्यास को धिक्कार है। विना ऋषि बने वेद का मन चाहा अर्थ भी योग के महत्त्व को नहीं बढ़ा सकता, धन दे सकता है। योग की अन्यसाधनायें भी धन दे सकती हैं। विना केवल वैराग्य ही नहीं, अपितु पर वैरागी दयानन्द सा अवधूत बने विना योग भी सिद्ध न होगा।

इन परिस्थितियों में संसार ऐसे ब्रह्मचारियों या पचास से ऊपर वाले वान प्रस्थों की प्रतीक्षा में है। जो कम से कम १० वर्ष तक योग सिद्ध होकर अवधूत योगिराज दयानन्द की तरह वेद प्रचार में लगें संसार को आलोकित करें। मार्ग प्रदर्शन करें, सूर्य,चन्द्र ही संसार को आलोकित् कर सकते हैं, तारा गण नहीं।

योगी का यह आर्तनाद सशक्त, समर्थ, विरक्त युवकों, ऋषि के दीवाने आर्यों के अन्तस्तल छुँचेगा। दयालु भगवान् दया करेंगे।

—सच्चिदानन्द स्वामी योगी

ॐ

गुरु देव का आशीर्वाद

श्री १०८ योगीराज स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती जी महाराज

उत्तराखण्ड की महान् विभूति

संस्थापक योग निकेतन-गंगोत्तरी, उत्तरकाशी, मुनि की रेती

योग के विश्व-प्रसारक

जिन के प्रश्रय में योग तथा सन्न्यास की शुभ्र पुण्य मयी दीक्षा ली। सदा आशीर्वाद, स्नेह और गौरव प्राप्त किया। गुरुदेव के चरणों में शतशः प्रणाम। गुरु देव का आशीर्वाद सदा शिरोधार्य है।

अन्तेवासी

—सच्चिदानन्द स्वामी योगी

ॐ

विनम्र भेंट

सर्व श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी सरस्वती महाराज
के चरणों में
यह विनम्र भेंट

महात्मा श्री नारायण स्वामी जी महाराज
से सन्यास में दीक्षित

जिन के पुण्य मय प्रश्रय में, जिन की छत्र-छाया में रहते हुए आर्ष शास्त्रों, आर्ष पाठविधि योगानुशीलन तथा त्याग वैराग्य प्राप्त करने के प्रशिक्षण का सुयोग मिला।

चरणरज
—सच्चिदानन्द स्वामी योगी

ओ३म् सच्चिदानन्दाय नमो नमः ।

योगावतरण

योगी ही ऋषि हुए--

योगी परम्परा की मान्यता है[1]—"हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ही योग के आदि प्रवक्ता हैं। अन्य—कोई नहीं।" जितने ऋषि हुए हैं सब योगी हैं। 'ऋषि लोग धर्म को - गुण को साक्षात् करने वाले होते हैं।[2] परमात्मा के सत्, चित्, आनन्द तीनों गुणों को, आत्मा की चेतनता और प्रकृति की सत्ता को ऋषि लोग साक्षात् करने वाले होते हैं। 'यह साक्षात् योग-जन्य ही है, शास्त्र गम्य नहीं। योगी ही शब्द, ज्ञान और पदार्थ के मिले जुले संकर ज्ञान को अलग अलग विभाग करके एक ही शब्द पर धारणा, ध्यान, समाधि का प्रयोग—संयमजय अर्थात् स्वाभाविक संयम की स्थिति का लाभ कर उस का प्रयोग करने पर प्राणिमात्र की बोली को-भाषा को जान लेता है।[3] ऐसे योगी ऋषि ही मन्त्र-द्रष्टा होते हैं।[4]

प्राचीन और अर्वाचीन भारत-गौरव सब ही ऋषि मन्त्र-द्रष्टा थे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वसिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, मनु, नारद सब ही मन्त्र-द्रष्टा थे :—

ऋषि	मन्त्र
हिरण्यगर्भ ब्रह्मा-परमेष्ठीप्रजापति-स्वयंभू ब्रह्मा आदि ने	यजुः १ अध्याय, २ अध्याय के ऋषि हैं। दोनों के अर्थों का साक्षात् किया। ऋग्वेद के मण्डल १० के १२१ वें सूक्तका साक्षात् किया।

१—"हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः कश्चन पुरातनः।"
२—"साक्षात्कृतधर्माण ऋषियो बभूवुः" —यास्कः निरुक्ते।
३—"शब्दार्थ-प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्-
प्रविभाग संयमा त्सर्वभूतरुतज्ञानम्' —यो० ३. १७.
४—ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः।" निरुक्ते।

	यजु० अ० २३ क मन्त्र १ से ६५ तक के
	,, १६ ,, ४० से ६६ ,, ,,
	,, ३२ ,, १ से १२ ,, ,,
नारायण (विष्णु) ने	,, ३० ,, १ से ३ ,, ,,
	,, ३१ ,, १ से १६ ,, ,,
	सामवेद के ,, ६. ३. १३., ३. ७. १७ से २८ तक का
भर्गः (महादेवजी) ने	सामवेद के ३. १. ७. , ३. २. ९-२७, ५. १. १-१४, ५. १-२. १५ तक का साक्षात् किया।
वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	यजुः के अध्याय ३३ के १४, १८, २०, ४०, ७०, ७६, ७७, ८८ मन्त्रों का .,
	५ के, १६. ११७; ३ अध्याय के ६०, ६१ का
विश्वामित्रो गाथिनः	यजुः के ७ अध्याय के ३१. ३५ से ३८ के ३६ के, मन्त्र ३ गायत्री प्रणवव्याहृतिसहित देवीबृहती छन्दवालीका।
अगत्स्यो मैत्रावरुणः	यजुः ३३ अध्याय के २७, ३४ के ७८, ७९ का,
	३४ ,, ७ से ९ का
मनु वैवस्वत	यजुः के ८ अध्याय के २७ से ३१ तक
याज्ञवल्क्य	,, २६ ,, १ मन्त्र का,
नारद	सामवेद के मन्त्र ४.२.१०.१ का

अर्थों का साक्षात् किया।

योगी दयानन्द ने भी स्वीकार किया है कि 'जिन्होंने सारी विद्यायें यथावत् जान ली थी वे ऋषि हुए'।[1] ऋतंभरा प्रज्ञा योगी को ही मिलती है। धारणा, ध्यान, समाधि के सतत् एक विषय में स्वायत्त करने से प्रज्ञालोक नाम की ऋतंभरा का उदय होता है।[2] ऋतंभरा प्रज्ञा से जो कुछ योगी जानता है वह सर्वोत्कृष्ट ज्ञान होता है।[3] शास्त्रों के पढ़े लिखे दूसरों के किये अर्थों को

१—"यैः सर्वा विद्या यथावद् विदितास्ते ऋषयो बभूवुः।" ऋ०भ०भा० पृ० ६४६.

२—"तज्जयात्प्रज्ञालोकः।" यो० ३.५.

३—"तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कारप्रतिबन्धी।" यो० १.५०.

सही सही रूप में जानता है। श्रुत और अनुमान ज्ञान से ऋतंभरा का ज्ञान बहुत उत्कृष्ट होता है। ऋतंभरा से उत्पन्न ज्ञान अन्य सब संस्कारों के ज्ञानों को प्रतिबन्धित कर देता है।[1]

ऋषियों ने ही वेदार्थ जाना—योगी दयानन्द ने एक बढ़िया बात लिख दी है—

(प्रश्न) वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना ?

(उत्तर) परमेश्वर ने जनाया। धर्मात्मा योगी (धर्म को साक्षात् करने वाले) महर्षि लोग जब जब जिस जिस मन्त्र के अर्थ को जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुए तब तब परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये।"

सब ऋषियों ने समाधि लगा लगा वेदार्थों को जाना।

ये सब योगी ऐतिहासिक महापुरुष हुए हैं—"सब कोई जानते हैं कि [श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, नारायण, और शिव आदि] बड़े महाराजाधिराज और उनकी स्त्री सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती आदि महारानियां थीं।" —सत्यार्थ प्रकाश ११ समु०

"ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वर-रचित पदार्थ हैं जिनको मैं भी मानता हूं।" —स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

ब्रह्म के अवतार—**महादेव** कैलाश के रहने वाले थे। **कुबेर** अलकापुरी के रहने वाले थे। —उपदेश मञ्जरी पृ० ११६

इतिहास सिद्ध कर रहा है कि ये सब ब्रह्म के अवतार थे। उतरने का स्थान थे। ब्रह्म इन के आत्मा में उतरा हुआ था। ये समाधिस्थ रहते थे। ब्रह्म दर्शन करते थे। व्युत्थान दशा में भी ब्रह्म साक्षात् रहता था। ब्रह्म हर समय उतरा रहता था। इस लिये ये अवतार थे।

ब्रह्माजी ऋतंभर-प्रज्ञ थे। चारों वेद उपस्थित थे। विवेकजज्ञान के स्वामी थे। सब विषय का इनको ज्ञान था। कुछ भी छिपा नहीं था। काष्ठा को प्राप्त था। अक्रम था।

विष्णुजी को अस्तेय सिद्धि था। संसार के सब रत्न उनको प्राप्त थे। गृहस्थ होते हुए भी मधुमती भूमिक थे। सब सम्पत्ति, वैभव उपहृत होते थे पर यह उनके सङ्ग, स्मय से बहुत दूर थे। समाधि निरत थे।

१—श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्।" यो० १. ४९.

महादेवजी अहिंसा प्रतिष्ठ थे। सारे ही यम इनमें स्थिति लाभ किये थे। सांप लिपटे रहते थे। मूषक पास में कल्लोल करते थे। कार्तिकेय का मयूर भी पास में नृत्य करता रहता था। मृत्युंजय थे। रुण्ड मुण्डों की माला और श्मशान की भस्म इनके अंग की शोभा थी। कल्याणकर थे। मस्तिष्क सदा शान्त, चन्द्र और गंगा सा शीतल रहता था। मानो चन्द्र, गंगा वहां वास कर रहे हों। गृहस्थ होते हुए भी पूर्ण ब्रह्मचारी थे। पूर्ण विरक्त दिगम्बर थे। क्लेश कर्म को योगाभ्यास से दग्ध कर दिया था। पार्वती का तप भी उग्र था। अपर्णा रही थीं। इन्हीं गुणों से कैलाशवासी कैलाशाधिपति बने।

नारदजी—उदान जयी थे। लोक लोकान्तर में उनकी अबाध गति थी।

व्यासजी—विलक्षण ऋतंभरा थी। चारों वेदों का ओर से छोर तक मनन निद्यध्यासन था। ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रणयन इनकी ही शिष्य परम्परा का आश्चर्यकर कार्य था। ४५० वर्ष के युगद्रष्टा थे। १५० वर्ष घोर तप कर शुक सा पुत्र लाभ किया था। श्रुति-आधारित वेदान्त की रचना की थी। मीमांसा और योग पर अनुभव सिद्ध प्रामाणिक भाष्य लिखा था। महाभारत जैसे इतिहास और गीता जैसे भगवद्वाक्य की रचना की थी। इनकी महत्ता और ऋतंभरा के कारण महाभारत पञ्चम वेद कहलाया। योग की महिमा अगाध है।

गायत्री द्रष्टा विश्वामित्र—योगी विश्वामित्र प्रधान-जयी थे। घोर तपस्वी थे। राजपाट परित्याग कर तपो बल से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। यही महामहिम देवीवृहती छन्द वाली सप्रणवमहाव्याहृति गायत्री के मन्त्रार्थ द्रष्टा थे। पूर्ण योगी थे। योग का प्रचार किया था। गायत्री मन्त्र के आदेशानुसार भगवान् को पाया था। इनका दृष्ट मन्त्र ही गुरु मन्त्र बना—

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु० ३६. ३.

—सत्, चित्, आनन्द स्वरूप ओम् है। उस पापों को भूनने वाले ओम् के श्रेष्ठतम स्वरूप का ध्यान करें। जो हमारी बुद्धि में स्थित ध्यान को प्रेरित कर समाधि तक ले जाये।

लम्बी सम्प्रज्ञात समाधि से प्रकृति, आत्मा, परमात्मा के शुद्ध रूप का ज्ञान-विवेक प्राप्त करे।

योगीराज भगवान् कृष्ण सिद्ध योगी थे। आपको काय-संपत् प्राप्त

थी। आठों महासिद्धियों के सिद्ध स्वामी थे। रूप लावण्य अनोखी काय संपत् थी। शरीर वज्रसम कठोर था। योग प्रधान गीता-सम संसार समादृत ज्ञास्त्र-रत्न का प्रादुर्भाव श्रीमुख से ही हुआ था। अवतारी महा-पुरुष थे। जीवन भर धर्मरक्षा और मानव कल्याण के लिये प्रयत्न-शील रहे।

योगी दयानन्द—इसी योगी परम्परा में योगी दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य इनका लोक विख्यात है। भूत-जयी श्रेणी में अभ्यास चालू था। कलिकाल के मानव उद्धार के लिये ही इन्होंने जन्म लिया था।

आप उच्च कोटि के ऋतंभरप्रज्ञ योगी थे। जहाँ ऋषियों ने अध्याओं या कुछ मन्त्रों का ही साक्षात्कार किया वहाँ **योगी दयानन्द** ने लगभग बारह सहस्र १२००० मन्त्रों का योग समाधि से साक्षात्कार किया। समाधि में चारों वेदों के मन्त्रों की विषय सूचि भाष्य से पहले ही लिखा दी विषद भाष्य सम्पूर्ण यजुर्वेद का और ऋग्वेद के ७वें मण्डल के ७३वें सूक्त तक का मिलता है। कैसा अपूर्व योगी था। खाने-पीने की समस्या उसके लिये नहीं थी। आबू की गुफाओं और हिमालय में वह अब्भक्ष और वायु-भक्ष ही रहा था। लम्बी लम्बी समाधियाँ लगाते थे पर वह अपनी योग सिद्धियां किसी को दिखाते न थे।

योगी दयानन्द के विलायत में अनेक भक्त थे। एक बार सेण्ट साहब ने योगेश्वर से कहा—"हमें कुछ योग सिद्धियां दिखाइये।"

योगी ने मना कर दिया। योगीराज ने १४ जुलाई १८८० को **कर्नल अलकाट को लिखा था**—

"जो मैं ने सेण्ट साहब से कहा था वह ठीक है क्योंकि मैं **इन इन्द्र-जाल की बातों को देखना दिखाना नहीं चाहता** चाहे वे हाथ की चालाकी से हों चाहे योग की रीति से। क्योंकि योग का अभ्यास किये बिना किसी को भी उसका महत्त्व वा उसमें सच्चा प्रेम कभी नहीं हो सकता वरन सन्देह और आश्चर्य में पड़ कर उस आडम्बर की परीक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़ कौतुक देखने को सब चाहते हैं। उसके लिए साधना करना स्वीकार नहीं करते।

सेण्ट साहब को **मैंने न दिखलाया, और न दिखलाना चाहता हूं** चाहे वह प्रसन्न रहें या अप्रसन्न, क्योंकि जो मैं इस में प्रवृत्त हो जाऊँ तो सब मूर्ख और पण्डित यही कहेंगे कि हम को भी कुछ योग की आश्चर्यमय सिद्धियां दिखलाइये जैसे अमुक को आपने दिखलाई।

ऐसी कौतुक लीला मेरे साथ भी लग जाती जैसी मैडम ऐच० पी० ब्लॉवैटस्की के पीछे लगी हुई है।.....जो कोई आता है वह यही कहता है कि मैडम साहब ! आप हम को भी कुछ तमाशा दिखाइये। इत्यादि कारणों से इन बातों में प्रवृत्ति नहीं करता न कराता हूं। किन्तु कोई चाहे तो उस को योगरीति सिखा सकता हूं जिसके अनुष्ठान से वह स्वयं सिद्धि को प्राप्त हो सकता है।"

"जो सत्य धर्म, सत्य विद्या और ठीक २ सुधार की और **परमयोग आदि की** बातें सदा से जैसी आर्यावर्त्तीय मनुष्यों में थीं वैसी कहीं न थीं और न हैं।"

"**धर्म दिवाकर**, मासिक, कलकत्ता ने लिखा--"अठारह घण्टे की समाधि लगाने वाले जिस (**दयानन्द**) को लोग परमयोगी, जड़भरत का अवतार कहते हैं, वह कहीं भी अपने आप को लोगों में योगी प्रसिद्ध करने की चेष्टा नहीं करता। भला सच्चे गुलाब को बनावट की क्या आवश्यकता।"

—भाग १ अंक ८ पृ० १२४ से १२८ मार्गशिर सं० १९४०.

योगी दयानन्द सिद्धियां दिखाते तो नहीं थे पर उन को यथावसर काम में अवश्य ले आते थे। इस को उन्होंने स्वयं श्रीमुख से कहा भी था।

योग सिद्धि बिना बड़ा कार्य नहीं होता—"एक दिन पश्चिमी विज्ञान के एक पण्डित ने योग की सिद्धियों की सत्यता में शंका की। महाराज ने पहले तो युक्ति प्रमाण द्वारा उन की सत्यता निरुपित की और अन्त में यह कहा—

"**क्या आप यह समझते हैं कि हम इतना बड़ा कार्य योग सिद्धि के बिना ही कर रहे हैं।**" **इस पर वह शान्त हो गया।**

ऋषि की योग सिद्धियां—

जो अन्यों ने देखा वह पढ़िये—

प्रकाश का चक्र—"एक दिन सवेरे एक काषायाम्बर धारी बिहारी ब्राह्मण दण्ड-कमण्डलु लिए नौलखा उद्यान में आ निकला। उसने दूर से देखा कि कोई महात्मा पद्मासन जमाये ध्यान में लीन है। वह और निकट आया। महामुनि की मनोहारिणी मूर्ति को एक टक, लालायित लोचनों से निहारने लगा। बाल सूर्य की सुनहरी किरणें उन की कुन्दन समान दीप्तिमान् देह पर पड़कर उसे और भी देदीप्यमान कर रही थीं। स्वर्ण कलश की भान्ति उन का मस्तक चमक रहा था। तप्त ताम्र समान उनके दोनों हाथों की हथेलियां मुद्रा बद्ध दशा में शोभायमान थीं। सूर्य की तरुण किरणों

से प्रकाशित उनके अरुण वर्ण नख नवपल्लव सदृश लहकते दिखाई देते थे। उदय कालीन सूर्य समान रक्त वर्ण उनके दोनों होटों पर एक नीरव, अनुपम और अनिर्वचनीय आनन्दमयी मुस्कान खेल रही थी। उस विहारी ब्राह्मण को ऐसा प्रतीत हुआ कि सर्वाङ्ग सुन्दर स्वर्ण प्रतिमा के चहुँ ओर प्रकाश पुंज का एक चक्र सा बना हुआ है।" दयानन्द प्रकाश पृ० ५४६

अवधूत अवस्था—"जिन दिनों स्वामी जी प्रयाग में निवास करते थे, उन दिनों शीत अधिक पड़ता था। स्वामी जी रात दिन सिर्फ एक कौपीन पहने रहते थे और कोई कपड़ा न पहनते थे। न ओढते थे। यहाँ तक कि रात को भी जब बर्फ पड़ती तो गङ्गा के किनारे खुले मैदान में रेत पर या किसी चबूतरे पर ऐसे आराम से सो जाया करते थे जैसे कोई किसी गरम कमरे में लिहाफ तोशक के अन्दर सोता है।" पृ० ११४ म. द. जी. च

सती की मढ़ी—"उस समय उनका रेत का बिस्तर, ईन्टों का तकिया रहता था। उनके पास केवल एक कौपीन थी। वस्त्र ग्रहण नहीं करते थे।" —आर्य धर्मेन्द्र जीवन पृ० ८८.

कर्णवास में—माघ में एक दिन प्रातः काल अत्यन्त शीतल वायु चल रहा था। कडाके का जाड़ा था। महाराज पद्मासन लगाये उपदेश में रत थे। उनपर शीतातिशय का प्रभाव न था।

ठाकुर गोपालसिंह ने पूछा—"आप पर शीत का कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। महाराज बोले—ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इस का कारण है।"

ठाकुर—"हम कैसे जानें?"

महाराज ने अपने हाथों के अंगूठे दोनों घुटनों पर रख कर दबाये। और सारे शरीर से पसीना चू निकला। लोग चकित हो गए। उन्हें महाराज के योग में पूरा विश्वास हो गया।

——पृ० ११४ देवेन्द्र बाबू लिखित जीवन चरित्र

"मैंने पहाड़ के नीचे जो मार्ग जाता था उसे पकड़ लिया। मैं वन की ओर अलकनन्दा के साथ साथ चलने लगा। पर्वत और पर्वत के नीचे मार्ग सब ही मोटे वर्फ से ढका हुआ था। इस कारण मैंने बहुत ही कष्ट से उस दुर्गम मार्ग का अतिक्रम किया और जो स्थान अलकनन्दा का उत्पत्ति स्थान है वहां पहुँच गया। वहाँ मैंने देखा कि मेरे चारों ओर ही गगनभेदी पर्वतमाला खड़ी है। किसी ओर से भी मार्ग का कुछ पता न पाकर कुछ देर तो में इतस्ततः घूमता

रहा। और कुछ आगे बढ़कर मैंने देखा कि मार्ग तो क्या मार्ग का चिन्ह तक भी न था। इस हेतु से मैं थोड़ी देर तक तो किंकर्तव्य-विमूढ़ सा रहा। पीछे नदी के तट पर जा कर मार्ग का अनुसन्धान करना ही कर्तव्य स्थिर किया।

उस समय मैं साधारण और पतला कपड़ा पहने हुए था और वहां का शीत बहुत ही अधिक और असह्य था।"

—थियासोफिस्ट आत्म चरित्र।

यह पतला कपड़ा टिहरी चित्र वाला छाती पर बंधा कटि वस्त्र ही है। इस प्रकार शीत में—हिम में घूमना समान-जय की घोषणा करता है।

समान जयाज्ज्वलनम्। —यो ३.५०।

योग में ऋषि ने इस का अभ्यास किया हुआ था।

कायम गंज—मार्गशीर्ष १९२५—"जब भोजन का समय हुआ लोगों ने स्वामी जी से कहा 'महाराज स्नान कर लीजिये। भोजन पा लीजिये।"

वह बोले—"हमारे पास सिवाय एक लंगोट के और कुछ नहीं है, यहां माइयों का गमनागमन है। जब तक लंगोट नहीं सूखता तब तक हम कोई दूसरा वस्त्र धारण नहीं कर सकते। हम यहाँ स्नान के बाद नग्न नहीं रह सकते।"

तब सब लोगों के कहने से वह लाला गिरधारी लाल के बाग में जा एकान्त में गये, स्नान और भोजन किया। —म. द. जी. च. पृ० १३०.

शीताधिक्य होने पर भी वह कोई वस्त्र न पहनते थे। यदि कोई उन्हें गरम कपड़ा दे जाते तो या तो किसी ब्रह्मचारी को दे देते या गरीबों को बांट देते थे। मिष्टान्नादि भी लोगों को बांटे देते थे।

—म. द. जी. च. पृ० २४६

"अवधूत दशा में ४०। ४० मील चलना मेरे लिए कोई बात न थी। मैं लगातार कई कई दिन तक तप्तरेणु में पड़ा रहा हूँ और हिमाछादित पर्वतों में और गङ्गातट पर नग्न और निराहार सोया हूं।".

मेरठ में अपने भक्तों से प्रेमालाप करते हुए महाराज ने अपने जीवन की ये घटनायें सुनाईं। —म. द. जी. च. पृ० ६२२.

घोर तपस्वी, अवधूत, मौनी दयानन्द योगी के तपोबल से संसार का अज्ञानान्धकार छिन्न-भिन्न हुआ। (पृष्ठ २३)

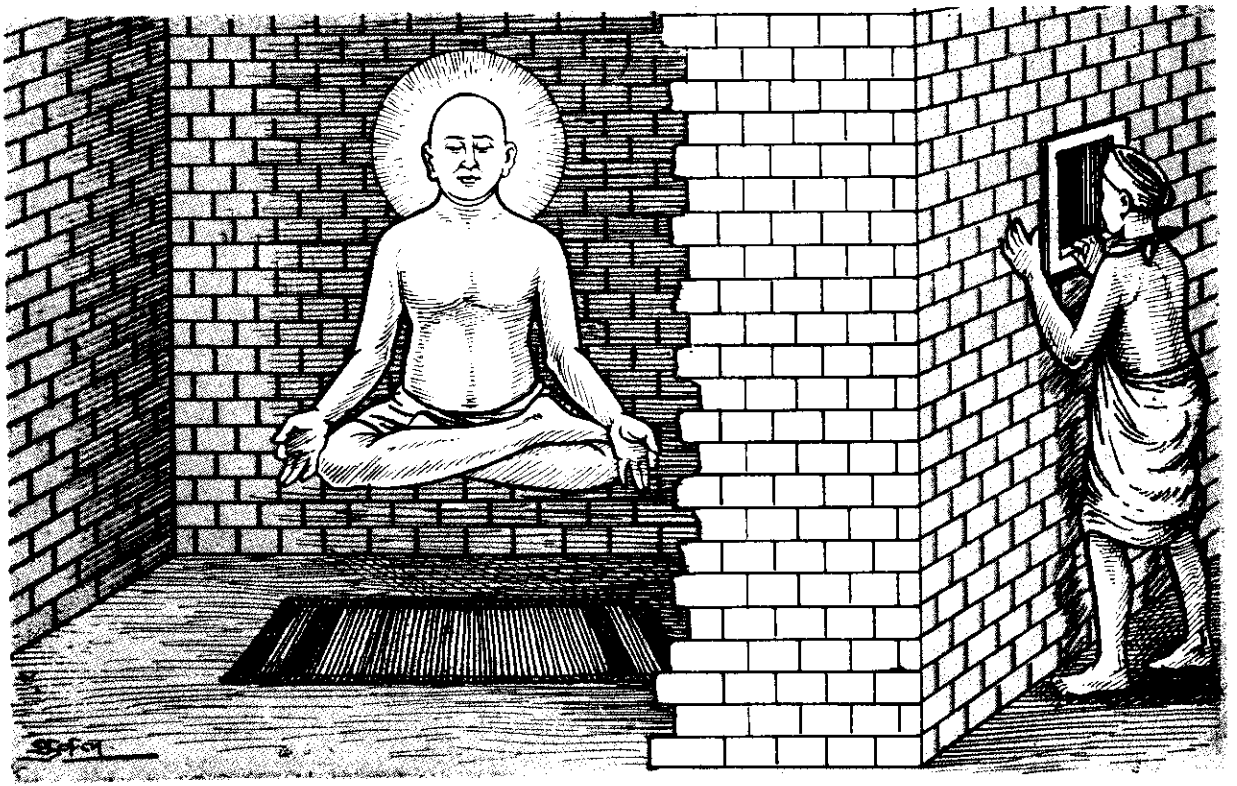

उदानजयी, सिद्ध योगी महर्षि दयानन्द की अधर में समाधि तथा साक्षात्कर्ता स्वा० सदानन्द (पृष्ठ २५)

फर्रुखाबाद—लाला जगन्नाथ ने स्वामी जी के लिये उनके स्थान पर पयाल (धान की पुराल) डलवा दी थी। रात्रि में वह उसी में से कुछ अपने नीचे और कुछ ऊपर डाल कर सो जाते थे। लोग कम्बल आदि देना चाहते तो न लेते थे। —म. द. जी. च. पृ० १३३

कानपुर—तीन मास रहने के पश्चात् एक दिन प्रातः काल बिना किसी को सूचना दिये लंगोट, वस्त्र और नस्य की पुड़िया छोड़कर अनिर्दिष्ट स्थान को चल दिये। स्वामी जी एक ही लंगोट रखते थे। कानपुर में एक सज्जन ने उन्हें दूसरा लंगोट दे दिया परन्तु यात्रा में दूसरे लंगोट का रखना उन्हें भार प्रतीत हुआ, इसलिये जाते समय उसे कानपुर ही छोड़ गए। —म. द. जी. च. पृ० १५८.

शोलये तूर—कानपुर ने इस प्रकार लिखा है—सं० १८६९ में—"संस्कृत के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में बात-चीत नहीं करते। एकान्त वासी साधु हैं। किसी स्थान पर आते जाते नहीं। अवधूतों की सी आकृति है।" —म. द. जी. च. पृ० ६३१.

उदयपुर महाराज ने कहा—"ऐसा मनुष्य सांसारिक बन्धों से सर्वथा स्वतन्त्र तुम ने कोई देखा है। ऐसा होना कठिन है।"—पं० लेखराम —म. द. जी. च. पृ० ६०४.

अधर में समाधि—प्रयाग की घटना—"पण्डित ठाकुर प्रसाद जी के हृदय में स्वामी जी की योगमुद्रा देखने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। एक दिन स्वामी जी के सेवकों से पूछ कर वे उस कुटिया के द्वार पर जा खड़े हुए जिसके भीतर स्वामी जी ध्यानावस्थित थे। यद्यपि द्वार बन्द था परन्तु किवाड़ों के छिद्रों में से महाराज की आकृति स्पष्ट दीख पड़ती थी। ठाकुर प्रसाद जी बहुत देर तक महाराज के दर्शन करते रहे। उन्होंने यह भी देखा कि महाराज का आसन धीरे धीरे भूमि से ऊपर उठकर **अधर में अवस्थित** हो गया। उस समय उनकी मुद्रा की अद्भुत छवि थी। उनके मुखमण्डल पर एक प्रकाशमय चक्र बना हुआ था।

—दयानन्द प्रकाश पृ० २६९.

उदानजय—यह योगी दयानन्द का उदानजय था। देखो यो.३.३९.। इस उदान पर वशित्व होने से उत्क्रान्ति, ऊपर उठना सिद्ध होता है। जल कण्टक आदि में धंसता नहीं। प्रतीत होता है इसी उदानजय से ऋषि ने हिमालय की यात्रा की।

७० मील की हिम यात्रा १२ घण्टे में—अलकनन्दा स्रोत तक की

यात्रा कठिनतम है। पूरी सामग्री-छोलदारी, भोजन, कुली लेकर कोई कोई यात्री केवल सत्पथ तक की १४-१५ मील की यात्रा ८ दिन में करते हैं। सत्पथ से अलकनन्दा का स्रोत २० मील से अधिक है। वहां तक कोई यात्री नहीं जाता, मार्ग ही नहीं है। यात्राओं में वर्णन इस प्रकार लिखा है :—

बद्री नारायण से ब्रह्म कपाल तीर्थ होते हुए नीचे ब्रह्म कुण्ड तीर्थ है। उससे आगे अलकनन्दा के मोड पर आधा मील दूरी पर अत्रि अनसूया तीर्थ है। माणा सड़क पर हो २ मील तक है। पास हो इन्द्रधारा श्वेत झरना है जिसे इन्द्रधारा इन्द्रपद तीर्थ कहते हैं। इस पार धर्म क्षेत्र है। ३ मील पर माता मूर्ति देवी का छोटा मन्दिर है। उस पार माणा ग्राम ३ मील पर है। इस पार अनेक तीर्थ हैं। वसुधारा ५ मील पर है। झरना गिरता है। छोटी २ फुआर बहुत दूर तक गिरती हैं। धारा में स्नान करना परम पुण्य माना जाता है। पर यात्रियों का कहना है—"वहां स्नान करना मृत्यु का बुलाना है। अतः ऐसे ही लौट आते हैं। आगे जाना चाहा पर हिम्मत न पड़ी। सामान और ५ घोड़े साथ थे। पर फिर भी लौट आये।' यह आप बीती श्री अर्जुनदेव जी गोगिया कलकत्ता वासी ने बतायी। इससे आगे भोज पत्र वृक्ष मिलते हैं। लक्ष्मी वन ४ मील है। आगे लक्ष्मी धारा है। उस से आगे मार्ग अत्यन्त कठिन है। सैङ्कड़ों धारायें हैं। नारायण पर्वत सीधा दीवार सा है। आधा मील पर चक्र तीर्थ है। त्रिकोण सरोवर है। सत्पथ ४ मील पर है। यहां तक की यात्रा खच्चर, कुली, पूरे सामान के साथ आठ दिन की है। आगे गोल कुण्ड जल रहित है। आगे सोम तीर्थ है। आगे वर्फ ही वर्फ है, मार्ग नहीं है। नर, नारायण पर्वत यहां मिल गए है। कुछ दूर पर एक छोटा सूर्य कुण्ड है। विष्णुकुण्ड कुछ दूर है। त्रिकोण पर्वत लिङ्ग के आकार का है। भागीरथी अलकनन्दा संगम है। आगे अलकापुरी शिखर है। विष्णुकुण्ड है। अलकनन्दा की मूलधारा। स्वर्गारोहण शिखर सोपानमय पर्वत है। इस से आगे अलकनन्दा स्रोत है। दूसरे किनारे से लौटते समय अच्छा मार्ग है। सत्पथ, वसुधारा, व्यासगुफा, जहां व्यास ने शास्त्र लिखे, पास ही गणेश गुफा है। शम्याम तीर्थ, माणा, सरस्वती धारा, केशव प्रयाग, अलकनन्दा पर पुल-भीमशिला जिसे भीम ने उठा कर धारा पर रख कर पार करने का पुल सा बना लिया था। यही मानसोद्भेद तीर्थ है। बस आगे बद्रीनाथ आ जाता है।

यदि कोई साहसी करे तो यह यात्रा एक मास से कम में नहीं होती, ऐसी तीर्थ-यात्रा लेखकों की मान्यता है। पर योगी की बात विचित्र है। अपने थियासोफिस्ट वाले आत्म चरित्र में लिखते हैं—"एक दिन सूर्योदय के होते ही मैं अपनी यात्रा पर चल पड़ा और पर्वत की उपत्यका में होता हुआ अलकनन्दा के तट पर जा पहुंचा"।(पृ. ३४) आगे पृष्ठ ३८ पर लिखा है—"उसी सायं लगभग ८ बजे बद्रीनारायण जा पहुंचा।"

अर्थात् अलकनन्दा की यात्रा केवल १२ घण्टे में की। अलकनन्दा स्रोत बद्रीनारायण से ३५ मील पड़ता है। ३५ मील बर्फ में बद्रीनाथ की १०२४४ फिट की ऊंचाई से, सतोपथ १४००० फिट, अलकापुरी १५००० फिट ऊंचाई तक बर्फ में जाना, एक ही चद्दर में जाना, नंगे पैर जाना, यात्रा एक मास की १२ घण्टे में पूरी कर लेना, योग का चमत्कार नहीं तो क्या है। यह यात्रा उदानजय के द्वारा हिम स्तर से असङ्ग रह ऊपर ऊपर आकाश में चले बिना नहीं हो सकती। यही कारण है कोई भी योगी का जीवन गवेषक इस यात्रा का वृत्तान्त अपनी आंखों न देख सका। जो कुछ योगी ने लिख दिया उसी को साहित्यमयी भाषा में लिखकर सन्तोष कर लिया।

कश्मीर, कैलाश—गंगासागर, रामेश्वर यात्रा—इसी उदानजय के आधार से ऋषि ने कैलाश तक की यात्रा की थी। उपदेश मञ्जरी (पूना-व्याख्यानों) में १०४ व्याख्यान में योगी दयानन्द ने कहा था—"महादेव कैलाश के रहने वाले थे। कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदारखण्ड का वर्णन किया गया है। हम स्वयं भी इन सब ओर घूमे हुए हैं।" कैलाश की ऊंचाई २२०३८ फिट है। माना मार्ग १७००० फिट ऊंचा है। वहीं कुल्लु के पहाड़ों में पार्वती घाटी है। यह १५००० से अधिक उंचाई पर है। योगी यहां सब स्थानों पर उदानजय और समान-जय के सहारे घूमे थे।

'मेरठ में अपने भक्तों से प्रेमालाप करते हुए महाराज ने अपने जीवन की कुछ घटनायें भी सुनाई थीं। "आप इस समय आश्चर्य करते हैं कि मैं इतनी दूर तक वायु सेवन के लिये जाता हूं परन्तु अवधूत दशा में चालीस चालीस मील चलना मेरे लिये कोई बात न थी। मैं एक बार गंगोत्री से चल कर गंगासागर तक और एक बार गङ्गोत्री से रामेश्वर

तक गया था 'बद्रीनाथ में रह कर मैंने गायत्री का जपानुष्ठान किया था। रात्रि में जब तेल न रहता था तो मैं बाजार के दीपक के प्रकाश में पढा करता था। मैं लगातार कई दिन तक मध्याह्न में तप्तरेणु में पड़ा रहा हूं। और हिमाछादित पर्वतों में और गङ्गा तट पर नग्न और निराहार सोया हूं।''

—महर्षि का जीवन चरित्र—पृ. ६२२.—दे. वा.

इन लेखों के उद्धरणों और पर्वतीय यात्राओं से उदानजय और समानजय की बात तो स्पष्ट होती ही है, साथ यह भी स्पष्ट हो रहा है कि योगिराज दयानन्द काश्मीर से कैलाश तक, गंगोत्तरी से पूर्व में गंगा सागर तक और दक्षिण में रामेश्वर तक सर्वत्र भारत भू का भ्रमण कर चुके थे। यह यात्रा वर्णन सिवाये इस आत्म चरित्र के अन्यत्र कहीं नहीं है। अतः योगी का यही परम पावन विशुद्ध पवित्र आत्मचरित्र है।

थियासोफिस्ट में छपा आत्मचरित्र बहुत संक्षिप्त है। देखिये पत्र विज्ञापन में पत्र २७ अगस्त १८७२ का पत्र सं० १८३ :—

''कुछ थोड़ा सा जन्म चरित्र लिख कर भेजते हैं। हमारा शरीर दस्तों की बीमारी से बहुत दुर्बल हो गया था।''

१८८ संख्या के पत्र में लिखा है—''यह संक्षिप्त जीवन चरित्र ८ मास की लम्बी बीमारी में लिखा गया है।''

१७८ संख्या के पत्र में लिखा है :—

(3) The question with regard to my life, I should say that at present, I am not quite prepared to undertake so long a business. I shall give you a brief account of me after some time. I shall do this work myself or have it done directly under my own eye. Certificate will follow.—मुरादाबाद से, १३ जुलाई १८७९।

पत्र सं० १९६, ६ नवम्बर ७९। ''कर्नल अलकाट साहब को मेरे शरीर का हाल विदित नहीं है कि दस मास तक तो दस्तों का रोग, पश्चात् एक बड़ा ज्वर आने लगा, सो तीन बार आकर छूट गया है। अब दोनों रोग नहीं हैं। परन्तु विचार करो कि इतने रोग के पश्चात् निर्बलता और सुस्ती कितनी हो सकती है। इसमें भी हम को कितने काम आवश्यक हैं जिन से दम भर अवकाश नहीं मिल सकता। जो एक जन्म चरित्र के लिखाने का काम ही होता तो एकबार लिख लिखवा के भेज दिया होता।''

योगसिद्धियों के विषय में मैडम ब्लावेटस्की को लिखा था—पत्र सं० १७६.

(b) "The soul in human body can perform wonders. By knowing the properties and formation of all the things in the universe (between God and Bhumi (earth) A human being can acquire powers of seeing and hearing etc. far distant objects which generally is unable to attend to."

पत्र सं० १६८, पृ० १४४.

"वैसे ही भीतर के योग से योगी लोग अनेक अद्भुत कर्म कर सकते हैं।"

"इसमें कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि मनुष्य लोग जितनी विद्या बाहर के पदार्थों से सिद्ध कर सकते हैं उससे कई गुणा अधिक भीतर के पदार्थों से सिद्ध कर सकते हैं। जैसे बाहर के पदार्थों का उपयोग बाहर से होता है, वैसे ही भीतर के पदार्थों का उपयोग भीतर से होता है। जैसे स्थूल पदार्थों की क्रिया आँखों से दीख पड़ती है, वैसे सूक्ष्म पदार्थों की क्रिया आँखों से नहीं दीख पड़ती, इसी लिये लोग आश्चर्य मानते हैं।

—"योग से कुछ नहीं होता, सर्वथा मिथ्या है। अब भी ऐसे लोग विद्यमान हैं कि योग बल से पृथ्वी से हाथ भर तक ऊपर उठ सकते हैं और ठहर सकते हैं।"

—श्री लेखराम लिखित म. द. स. जो. च. पृ. ६४२ हिन्दी।

—पत्र सं० १२८

Though I am very anxious that my auto-biography which you are publishing in your journal should be completed, I have not yet been able to give the necessary time to it. But as soon as possible I will send the nerrative to you.

—थियोसोफिस्ट अप्रैल १८८० पृ० १९०.

इन उद्धरणों से सुस्पष्ट है स्वामी जी थियोसोफिस्टों को जीवनी देने के लिए बहुत उत्सुक नहीं थे। उनसे आशंकित थे। मार्च ८२ के अन्त में ऋषि को लम्बा विज्ञापन छपाना पड़ा था जिसमें थियासोफिस्टों के अयुक्त व्यवहार के ९ कारण दिये हैं। अन्तिम पंक्ति में लिखा है—

"इस लिये यही निश्चय है कि इन थियासोफिस्टों की सोसाइटी और इनकी पूर्वापर विरुद्ध बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं। इस लिये इन से पृथक रहना अत्युत्तम है।"

थियोसोफिस्ट वाले भी इस बात को जानते थे :—

"Here the Swami ji skips over one of the most interesting episodes of his travel, unwilling as he is to impart the name or even mention the person who saved him. He tells it to friends but declines to publish the facts. —The Theosophist 1880. P 25.

संक्षिप्ततम जीवनी देने और सब बातें न कह सकने का मुख्य कारण ऋषि दयानन्द का देश की दशा से द्रवित हो ब्रह्मानन्द को छोड़ भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में लगना था। अस्तु। अभी योगी की योग सामर्थ्य का ही अध्ययन कीजिये।

जल पर पद्मासन—"सहजानन्द ने रात दिन महाराज श्री के पास निवास करते हुए देखा कि रात के समय केवल ४ घण्टे भर विश्राम लेते हैं। फिर उठकर ध्यानरूढ़ हो जाते हैं।

नौलखा उद्यान के पास ही एक विस्तीर्ण सरोवर है। महाराज गोवर्द्धन पर्वत को उसी के किनारे किनारे जाया करते। वे तो बहुत सवेरे जाते थे। परन्तु सहजानन्द जी सूर्योदय से कुछ ही पूर्व उसी ओर भ्रमण करने निकलते थे। एक दिन अपने निवास के उद्यान से बहुत अन्तर पर सहजानन्द ने देखा कि स्वामी जी जल पर पद्मासन लगाये योग मुद्रा में कमलदल की भाँति विराजमान हैं। गुरुदेव की इस मनोहर योग मुद्रा ने उन के मन में गहरा भक्ति भाव उत्पन्न कर दिया। उस शान्त समय में, उस शून्य प्रदेश में, उस शान्त सरोवर के ऊपरी भाग पर वे प्रशान्तात्मा ऐसे सुन्दर स्वरूप, ऐसे तप्त सुवर्ण वर्ण और मनोहर दिखाई देते थे मानो सागर में सूर्य उदय हो रहा है।"

—दयानन्द प्रकाश पृ० ५४६.

—दयानन्द जीवन चरित्र पृ० ६७६.

जल तल में समाधि—"काशी में स्वामीजी इस्लाम मत की त्रुटियाँ दिखाया करते थे। इस से कुछ मुसलमान बहुत रुष्ट हो गए थे। एक दिन

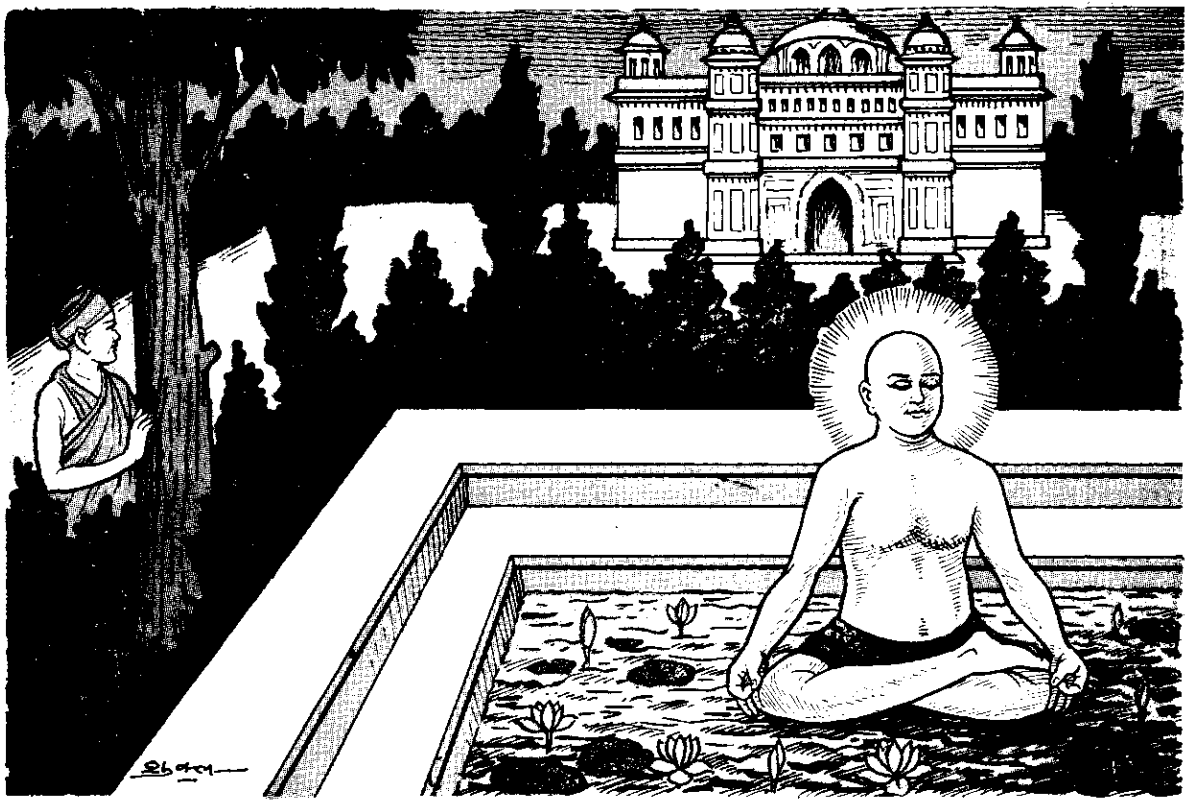

उदानजयी-सिद्ध योगी महर्षि दयानन्द की जल-तल पर समाधि (पृष्ठ ३०)

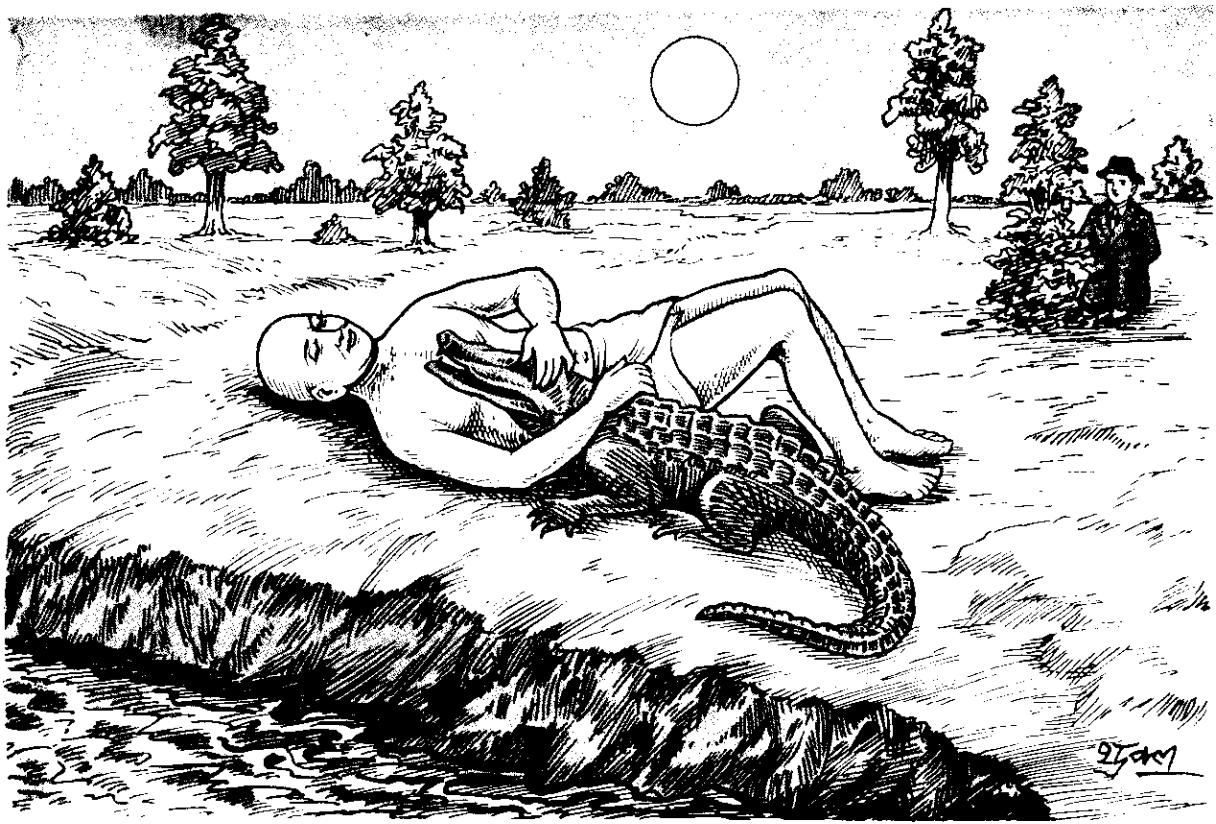

अहिंसा-सिद्ध अवधूत योगी दयानन्द मगर मच्छ से स्नेह मुद्रा में (पृष्ठ [illegible])

महाराज गङ्गा तट पर आसन लगाये बैठे थे। उसी समय दैव योग से मुसलमानों की एक टोली वहां आ निकली। टोली में बहुतों ने पहचान कर कहा "यह वही तो बाबा है जो हमारे मजहब की तौहीन कर रहा था।" उनमें से दो व्यक्ति बहुत आवेश में आ गए। स्वामी जी को उठा कर गंगा में फेंकने लगे। दोनों हाथों से स्वामी जी की दोनों भुजायें कन्धों के पास से दृढ़ता से पकड़ लीं। उन्हें झुलाकर गंगा की धार में फेंकना ही चाहते थे कि स्वामी जी ने अपनी भुजायें सिकड कर शरीर के साथ लगा लीं और बलपूर्वक स्वेच्छा से दोनों यवनों सहित गंगा में कूद गए। कुछ काल तक उन दोनों व्यक्तियों के हाथ शिकञ्जे में कसे रहे। परन्तु नदी में डुबकी लगाते समय महाराज को उन पर दया आ गई। उन्हें मुक्त कर दिया। वे दोनों बड़ी कठिनता से पानी से बाहर निकले। अपने साथियों के साथ हाथ में पत्थर ढेले लिए नदी पर बड़ी देर तक खड़े रहे। कि बाबा सिर उठाये तो उसे मारें। स्वामी जी तो उनकी इच्छा को जानते थे। वे गरिमा सिद्धि के बल पर पानी के तल में पद्मासन लगा कर बैठे रहे।

अन्धेरा हो जाने पर यवन टोली ने समझा बाबा डूब गया। इस लिए वे चले गए। बहुत देर पीछे स्वामी जी जल से निकल कर अपने आसन पर आ विराजे।

—दयानन्द प्रकाश पृ. २१४.

लम्बी समाधि—महाराज कभी-कभी लम्बी समाधि भी लगाया करते थे। (प्रचार काल में भी) अपनी कोठरी के गवाक्ष खोल देते थे। द्वार बन्द करके ध्यान में मग्न हो जाते थे। जहाँ कहीं लम्बी समाधि में अवस्थित होना होता वहाँ एक दिन पहले ही मिलने जुलने वालों को उस दिन के लिए आने से रोक देते। ·····बहिर्मुख कर्मचारी वर्ग तो यही समझता कि आज स्वामी जी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। भीतर पड़े आराम करते हैं। चलो छुट्टी मिल गई।

सहजानन्द ऐसी समझ के मनुष्य नहीं थे। उदयपुर में एक बार महाराज ने चौबीस घण्टों की समाधि ली। गुरु देव ने अपने नवीन शिष्य सहजानन्द को यह भेद पहले ही बता दिया था। कह दिया था आप चाहें तो चुपचाप, मौन भाव से खिड़की विशेष द्वारा देख सकते हैं। उनकी स्वीकृति को पा कर सहजानन्द ने तुर्य्यावस्था अवस्थित और असम्प्रज्ञात समाधिगत गुरु महाराज का उस दिन रात में कई बार दर्शन किया।

उस समय महाराज की काया अकम्प और अचल थी। वे सौन्दर्य-समुच्चय प्रतीत होते थे। उनके मुख मण्डल की कान्ति, मस्तक का तेज, मुद्रा की शोभा और देह की दिव्य दीप्ति अद्भुत और अनुपम दीख पड़ती थी। उनके चारों ओर शान्ति बरस रही थी। उस समय शान्ति रस मूर्तिमान् हो रहा था।

—दयानन्द प्रकाश पृ. ५४६.

मगरमच्छ से प्यार तक—ऋषि दयानन्द अहिंसा सिद्ध महा योगी थे।

कानपुर—गंगा किनारे एक दिन महाराज श्री मौज में जल में लेटे हुए थे। आधा शरीर जल में और आधा जल से बाहर था कि इतने में थोड़ी दूर पर ही एक मगर आ निकला। पण्डित हृदय नारायण के लघु भ्राता उसे देख कर भागे। चिल्लाये "स्वामी जी। मगर निकला है।" परन्तु उन के मुख पर भय की किञ्चन्मात्र रेखा भी दिखाई न दी। वह जैसे पड़े थे, वैसे ही पड़े रहे और बोले "जब हम उसका कुछ नहीं बिगाड़ते तो वह भी हमें दुःख न देगा।"

—म. दयानन्द जीवन चरित्र पृ. १५३.

मगरमच्छ से प्यार करने की घटना एक बार आर्य मित्र में छपी थी। जिसे पण्डित रामदत्त जी शुक्ल ने किसी अंग्रेज की डायरी से लिया था। पं. शिव सागर जी उपप्रधान आर्य समाज नैनीताल और मास्टर बहादुर राम जी मन्त्री रामगढ़ ने भी पढ़कर हमें सुनाया था।

गंगा सैकत में रात्रि में ऋषि उन दिनों अवधूत अवस्था में विचरण करते थे। किसी अंग्रेज ने उन की योग ख्याति सुनी। उन की खोज में वह गंगा किनारे ढूंढते २ पहुंच गया। रात हो गयी थी। चान्दनी छिटकी थी। दूर से अंग्रेज ने बालू पर घुटने उठाये किसी व्यक्ति को लेटा देखा। अश्रद्धा हुई। बैठ गया। रहस्य जानने के लिये बैठ कर सरकने लगा। जब कुछ पास पहुंचा तो योगीवर उछल पड़े। मगरमच्छ उन के पेट से मुख हटा गंगा की धारा की ओर जा रहा था।

योगीराज को उछलना इस लिये पड़ा कि यदि लौटते मगर की पूंछ से घाव पड जाता तो वह जानते थे उस का उपचार नहीं। अंग्रेज चकित हो गया। पास जा पग छूकर क्षमा मांगी। यह लिखित घटना लण्डन में अंग्रेज की डायरी में और आर्य मित्र की पुरानी फाइल में विद्यमान है।

दो वर्ष पूर्व मृत्यु का ज्ञान था—'थियासोफिस्ट' ने योगीराज ऋषि दयानन्द के परलोक गमन की खबर सुन कर यह लेख प्रकाशित किया था—

"हमारे पत्र प्रेरक आश्चर्य में हैं कि क्या स्वामी दयानन्द जैसे योगी को, जिसमें योग-विद्या की शक्तियां विद्यमान थीं, यह बात विदित न थी कि उनकी मृत्यु से भारत वर्ष को बड़ी हानि पहुंचेगी। क्या वह योगी नहीं थे ? क्या वह महर्षि नहीं थे ?

हम शपथ पूर्वक कहते हैं, कि स्वामी जी को अपनी मृत्यु का ज्ञान दो वर्ष पहले ही था। उन के अन्तिम वसीयतनामे की दो प्रतिलिपि जो कि उन्होंने कर्नल अलकाट और मुझ सम्पादक के पास भेजीं (ये दो प्रतिलिपियां हमारे पास उन के पूर्व मित्रभाव का स्मारक हैं) इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उन्होंने मेरठ में हमें कई वार कहा था कि हम १८८४ को नहीं देखेंगे।"

—मोनियर विलियम्स ने 'एथिनियम' पत्र में २३ अक्टूबर १८८० को लेख में लिखा था—"जब मैं बम्बई में था तो मैंने प्रशंसित स्वामी को आर्य समाज उत्सव में धर्म विषय पर उपदेश देते सुना था।

—म. द. जी. च० पृ० ६६५.

"स्वामी जी से कहा—आप योरुप जाने का संकल्प करें तो व्यय भार मैं अपने ऊपर लेता हूं।" स्वामी जी ने कहा—"विना अंग्रेजी सीखे वहां जाना व्यर्थ है। आयु बहुत अधिक शेष नहीं है। योरुप जाना नहीं बन सकता"।

—वहीं. पृ. ६६७.

अतीतानागत ज्ञान—पटना की घटना—नार्मल स्कूल का विद्यार्थी राजनाथ तिवारी ने अनुनय विनय कर महाराज श्री की सेवा में रहने की अनुमति ले ली। डिपटी सोहन लाल ने उस के भाग्य को बहुत सराहा। बुला कर कहा स्वामी जी के लिये दूध और मिश्री ले जाओ। स्वामी जी का स्थान २॥ कोश था। वह अन्धेरे में जाने से डरता था। पण्डित जी ने जाने के लिए बाध्य किया। मार्ग में उसे बहुत डर लगा। वर्षा हो रही थी। सड़क के दोनों ओर पानी था। सड़क के बीच में सर्प पड़ा था। पीछे लौटना चाहा। मुड़ा तो उधर भी सर्प था। बहुत घबराया। खड़े रहने में भी भय था। आगे बढ़ने में भी। उसने आगे बढ़ने

का ही निश्चय किया। सर्प के पास पहुंचा तो आंखें बन्द कर के छलांग मार कर ऊपर से कूद गया। किसी प्रकार दम ले जिवा कर स्वामी जी के पास पहुंचा।

स्वामी जी बैठे हुए थे। बाग के कुछ माली भी पास में बैठे हुए थे। स्वामी जी ने देखते ही कहा—"क्या तू मार्ग में डरा था। क्या तूने सर्प देखे थे"। राजनाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ।

—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृ. २१६.

भागलपुर—एक अग्रवाल स्वामी जी के लिए अन्नादि और दूध भिजवाने लगा। दो दिन तक तो महाराज ने ग्रहण किया परन्तु तीसरे दिन यह कह कर कि "हमें स्वार्थ का भोजन नहीं चाहिये, हम ईश्वर नहीं हैं, जो तुम्हें पुत्र दें और तुम्हारा अन्न खायें" उस को मना कर दिया।

पीछे ज्ञात हुआ कि वह पुत्र हीन था। उसे पुत्र की बड़ी कामना थी। इसी उद्देश्य से वह स्वामी जी के लिये अन्नादि भिजवाया करता था।

—स्वामी जी ने राजनाथ से जब कि वह रसोई बना रहा था कहा कि 'तेरा पिता आ गया'। हमने तुम से पहले ही कहा था कि आज्ञा लेकर आओ परन्तु तुमने न माना और उन्हें कष्ट हुआ।

वह रसोई के बाहर आया परन्तु उसके पिता का कहीं पता न था। आध घण्टे के पश्चात् उस का पिता सचमुच आ गया।

कलकत्ता—कहते हैं कि जब बाबू केशव चन्द्र सेन प्रथम बार स्वामी जी से मिले और बात चीत की तो उन्होंने स्वामी जी को अपना परिचय नहीं दिया था। बात चीत की समाप्ति पर केशव बाबू बोले—

केशव० "आप बाबू केशवचन्द्र से मिले हैं?"

दया० "हां मिला हूं।"

केशव० "परन्तु वे तो यहां थे नहीं।"

दया० "मैं अवश्य मिला हूं।"

केशव० "जब वे कलकत्ते मे थे ही नहीं, कैसे मिले?"

दया० "आप ही केशव चन्द्र सेन हैं।"

केशवबाबू चकित हुए। स्वामी जी के श्रद्धा सूत्र में बद्ध हो गये।

—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृ० २२६.

अमृतसर—एक दिन स्वामी जी महाराज अपने निवास स्थान के एक कमरे में बैठे पण्डितों को वेद भाष्य लिखा रहे थे। बीच में उठ खड़े हुए और कर्मचारियों से कहने लगे—"पुस्तकादि सभी उपकरण, झटपट इस कमरे से बाहर निकाल दो।"

कर्मचारियों ने आज्ञा का पालन तो किया पर वे मन ही मन यह कहते रहे "स्वामी जी ने यह कष्ट व्यर्थ ही दिया।" जब सारे उपकरण दूसरे कमरे में पहुंच गए तो प्रथम कमरे की छत धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी। उस समय कर्मचारियों को महाराज के अनागत ज्ञान का परिचय विस्मय के साथ हुआ। —वहीं, पृ० ३४६.

भूतजयी—स्वामी जी एक समय उपदेश दे रहे थे। उस समय एक ओर से घोर आन्धी, धूलि राशि भूतल आकाश को एकाकार करती उमडी चली आती दिखाई दी। पवन भी प्रचण्ड रूप धारण करने लगा। सत्संगी चलायमान होने लगे। उठने के लिए दायें बायें झांकने लगे।

उस समय महाराज ने मेज पर करतल प्रहार कर उच्च स्वर से कहा—"धैर्य रखिये। हिलिये नहीं। यहां आन्धी नहीं आयगी।" महाराज श्री के कथन पर लोग शान्त हो गए। सचमुच आन्धी भी वहां नहीं आयी।

—वहीं, पृ० ३४६

—मुनशी सेवाराम उन दिनों मेरठ में नहर के जिलेदार थे। एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि मैं नहर का डिप्टी मैजिस्ट्रेट हो जाऊं तो पहले मास का वेतन वेद भाष्य की सहायता में दूंगा। उसके कुछ काल पश्चात् उन्हें वह पद प्राप्त हो गया। उन्होंने अभी यह समाचार किसी से न कहा था, कि महाराज का एक पत्र उनके पास आया, जिसमें उन्हें बधाई दी गयी थी और उनकी प्रतिज्ञा याद दिलाई गई थी।

—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृ० ५०२.

गढ़मुक्तेश्वर—सती की मढ़ी—एक दिन एक मनुष्य ने आकर स्वामी जी से प्रश्न किया—'मेरा एक मित्र घर से कहीं चला गया है। उसका पता नहीं मिलता'। स्वामी जी ने हाथ से इशारा किया। जो पण्डित वहां बैठे थे, उन्होंने बताया कि कहते हैं रामेश्वर की ओर गया है।

एक दिन एक पण्डित स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने आया। वह अपना वक्तव्य एक कागज पर लिख लाया और उन्हें सुनाने लगा। स्वामी जी ने कहा—"क्या अपने पुत्र का लगन पत्र लाये हो। यह शब्द

सुनकर वह इतना घबराया कि फिर एक शब्द भी उसके मुंह से न निकला। बात सच्ची थी।

—म० द० जी० च० पृ० १०४.

मेरठ—शिव लाल रस्तोगी स्वामी जी के बड़े भक्त थे। एक दिन उनके पास जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक सर्प मिला। जब श्री सेवा में पहुंचे तो पहला प्रश्न स्वामी जी ने उनसे यह किया, "क्या मार्ग में सर्प देखा था।"

"जब वह चलने लगे तो महाराज ने कहा छाता ले लिया होता वर्षा होने पर भीगने से बच जाते।"

उस समय शिवलाल को वर्षा का कोई चिन्ह दिखाई न देता था। परन्तु मार्ग में इतनी वर्षा हुई कि घर पहुंचते पहुंचते वह खूब भीग गए।

—म० द० जी० च० पृ० ६२३.

—पं० आदित्य नारायण ने भी महाराज से उपासना में मन लगाने की विधि पूछी। महाराज ने उनसे कहा—"यम नियम का सेवन करो।" उन्होंने दूसरी, तीसरी बार भी इसी प्रश्न को किया। महाराज ने हर बार यही उत्तर दिया। पण्डित जी इस पर कुछ चिढ़े कि हमारा आना व्यर्थ हुआ। फिर उन्होंने सोचा, महाराज के इस उत्तर का क्या कारण है। उन्हें स्पष्ट ज्ञात हो गया। वह एक मुकदमे में झूठी साक्षी देकर आए थे। फिर भी देने वाले थे। बस यही कारण इतना बल देने का था। महाराज यह वृत्त अपनी योग विभूति से जान गए थे।

—म० द० जी० च० पृ० ६६२.

जयपुर—एक दिन महाराणा तथा सहजानन्द श्री सेवा में उपस्थित थे। वार्तालाप हो रहा था। महाराज ने कहा कि 'पं० सुन्दर लाल जी आ रहे हैं; यदि पहले से सूचना दे देते तो यान का उचित प्रबन्ध हो जाता।'

महाराणा ने इस पर कहा—'यान का प्रबन्ध अब भी हो सकता है।'

महाराज बोले—'अब तो वह बैल गाड़ी में आ रहे हैं। उसका एक बैल श्वेत है, और एक के शरीर पर लाल धब्बे हैं। बस कल यहाँ पहुंच जायेंगे।'

अगले दिन पं० सुन्दर लाल उदय पुर पहुंच गए और महाराज का कथन अक्षरशः सत्य निकला। —म० द० जी० च० पृ० ६७६.

ऐसी घटनाओं से जीवन चरित्र भरा पड़ा है।

परकाया प्रवेश:—**मेरठ**—एक दिन कर्नल ने स्वामी जी से कहा उन्हें और मैडम को—"इस बात में शंका है कि स्वामी शंकराचार्य ने अपनी आत्मा को एक राजा के शरीर में जो उसी दिन मरा था प्रविष्ट कर दिया था।"

स्वामी जी ने कहा—"यह विचित्र बात है कि मैडम के समान प्रवीण व्यक्ति को इस विषय में सन्देह हो।"

उन्होंने फिर कहा—"मैं प्रथम कोटि का योगी नहीं हूं। केवल मध्यम कोटि का हूं। परन्तु मैं अपनी चेतना शक्ति को शरीर के किसी भाग में केन्द्रित कर सकता हूं। अर्थात् उस भाग को छोड़कर मेरे शरीर के अन्य सब भाग मृतवत् हो जायेंगे। यदि आप यह दृश्य देखना चाहें तो मैं आपको दिखा सकता हूं। जब कि मैं एक मध्यम कोटि का योगी इतना कर सकता हूं तो एक उच्च कोटि का योगी इससे एक पग आगे बढ़कर अपने आत्मा को दूसरे शरीर में प्रविष्ट कर सकता है।"

—म० द० जी० च० पृ० ६१८.

ऋतंभरा प्रज्ञ—"मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्व मीमाँसा पर्यन्त अनुमान लगभग तीन हज़ार ग्रन्थों को मानता हूँ"। —भ्रान्ति निवारण

यह शब्द बतला रहे हैं कि उनका बोध कितना विशाल और गम्भीर था। जब वे तीन हजार प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं तो आश्चर्य नहीं उन्होंने उससे दुगुने ग्रन्थ पढ़े हों।

—मास्टर आत्माराम जी—आर्यधर्मेन्द्र जीवन पृ० २१८

—स्वामी जी की धारणा शक्ति अपूर्व थी। उन्होंने एक बार पं० भगवान् वल्लभ से सुश्रुत संहिता मंगवा कर देखी और एक दो दिन में ही उस पर इतना अधिकार प्राप्त कर लिया कि प्रसंग उठने पर वाक्य उद्धृत करने लगे। पृ० २०२.

(सुश्रुत संहिता हजारों पृष्ठ का ग्रन्थ है। सं०)

गुजरात—महाराज वेद भाष्य के कार्य में व्यापृत रहते थे। वह पण्डितों को वेद भाष्य लिखाया करते थे। उनके हाथ में कोई पुस्तक नहीं रहती थी। फिर वह इतनी शीघ्रता से भाष्य लिखाते थे। लेखकों को

बिखने से अवकाश नहीं मिलता था। उन्हें वेद कण्ठस्थ थे। —पृ० ४६१.

एक दिन एक उच्च शिक्षा प्राप्त बङ्गाली दार्शनिक से महाराज का वार्तालाप हुआ। वह महाराज की दार्शनिक विद्वत्ता से परम सन्तुष्ट हुआ। उसने लोगों के पूछने पर स्पष्ट कह दिया—"स्वामी जी तो ज्ञान की अगाध गङ्गा हैं। विद्या के अथाह समुद्र हैं। मैं तो उनके सामने कुछ भी नहीं जानता।" —पृ० ४६५.

—१९०८ में चरिताभिधान—डिकशनरी आटोबायोग्राफी एण्ड माइथालोजी (प्रकाशित सन् १९११, शकाब्द १८३३, २ संकरण)

बंगला में— पृ० २९३५ पर छपा है—

"**दयानन्द सरस्वती**—१८६९ ख्रीष्टाब्दे A. D. नवम्बर कार्तिक शुक्ला द्वादशी। महादेवेर त्रिशूल रक्षित—वाराणासी धामे मूर्तिपूजा-समर्थनेर निमित्त एक महासभा हइया। ऐयि सभाये काशीर महाराज सभापतीर आसन ग्रहण करेन। एयि सभाये दयानन्द सरस्वती सहित काशी पण्डित-गणेर विचार हइया।' एयि विचारे काशीर पण्डितगण अनेक प्रश्नेर उत्तर दिते पारेन नाई। अवशेषे गोल माल करिया, सभा भंग करेन। पण्डित गण कोलाहल करिया। बोलेन जइये—'दयानन्द पराजित होइया छेन।' एयि विचार विषये विभिन्न मत बाहिर है। **ताकि देखा जाये पण्डित गण विचारे पराजित होया छीलेन**। एवं विचार नीति असम्मानित करिया दयानन्देर **अमूलक पराजय** वार्ता घोषणा करि छीलेन। इहार पर जइयता वार काशी ते गय्या छीलेन तत वारी पण्डित गण के आह्वान करिया छीलेन। किन्तु केहीय साहस करिया विचारे प्रवृत्त हन्न नाई। अतः परतनि कलिकाताये आगमन करीन। ऐर वाने तेनि वैदिक धर्मे प्रवृत्त होई लन।"

लेखक—उपेन्द्र चन्द्र मुखोपाध्याय, ढाका नार्मल स्कूल के शिक्षक।

.....१ "इस काशीशास्त्रार्थ के विषय में विभिन्न मत नही हैं उससे देखा जाता है कि पण्डित लोग विचार में (शास्त्रार्थ में) पराजित हो गए थे और विचार विनिमय को असम्मानित करके दयानन्द के भित्तिहीन—आधार हीन पराजय के सम्वाद की घोषणा की थी। इसके बाद दयानन्द जितनी बार काशी मे आए थे उतनी बार ही पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया था। पर कोई भी शास्त्रार्थ में प्रवृत्त नहीं हुए थे।.....इत्यादि"

अंग्रेजी पत्र:—बंगाली कलकत्ता, ने भी लिखा था—

"He (Dayananda) stands forth as a rligious teacher of sur passing power and earnestness. He was a yogi, an ascetic who had abjured the world, but he was gifted with a practical sagacity which few men of the world could pretend to possess."

—स्वामी दयानन्द सरस्वती कोई साधारण कोटि के मनुष्यों में से नहीं थे। धर्मोपदेश करने में उन की शक्ति और उत्साहादिक गुणों में वह अद्वितीय थे। यद्यपि जन्म से उन्होंने इस असार संसार का परित्याग कर दिया था। और वे पूर्ण योगी थे, तथापि जैसा सर्वोत्तम ज्ञान उन में देखने में आया वैसा कदाचित् किसी अन्य में देखने में आवे।"

महाराज का मनोबल—रति राम नामी एक पहलवान था जिसे अपने बल पर बहुत घमण्ड था। एक दिन वह महाराज के स्थल पर आया। महाराज को देख कर तिरस्कार पूर्वक बोला—'अरे यह बाबा तो बड़ा हृष्ट पुष्ट है।'

महाराज ने उत्तर में कुछ न कहा परन्तु उस पर अपने नेत्रों की ज्योति कुछ इस प्रकार डाली कि उसका सारा घमण्ड चूर चूर हो गया। उस पर ऐसा आतंक छाया कि वह श्री चरणों में लोटता हुआ दिखाई दिया और हाथ जोड़कर अपने अशिष्ट व्यवहार के लिए क्षमा प्रार्थी हुआ।

—म. द. जी. च. पृ० ११३.

कर्णवास—कर्ण सिंह बड़ गूजर क्षत्रिय थे। जमीनदार और रईस थे। उपदेश में पहुँचे। महाराज को प्रणाम कर के बोले—

'हम कहां बैठें ?'

'जहां आप की इच्छा हो।'

(घमण्ड से) 'हम तो जहां आप बैठे हैं वहां बैठेंगे।'

(शीतल पाटी पर एक ओर हट कर)— 'आइये, बैठिये।'

'आप गंगा को नहीं मानते ?'

'गंगा जितनी है उतनी मानते हैं।'

'कितनी है ?'

'हम संन्यासियों के लिये तो कमण्डलु भर है, क्योंकि हमारे पास कोई अन्य पात्र नहीं।'

कर्ण सिंह गंगा की स्तुति में कुछ श्लोक पढ़ता है।

स्वामी जी—'यह बात तुम्हारी गप्प है। यह तो जल है। जल से मोक्ष नहीं होता। मोक्ष तो कर्मों से होता है।'

कर्णसिंह—'हमारे यहां राम लीला होती है वहां चलिये।'

स्वामी जी—'तुम कैसे क्षत्रिय हो, महा पुरुषों का स्वांग बनाकर नचाते हो। यदि कोई तुम्हारे पुरुषाओं का स्वाँग बना कर नचावे तो तुमको कैसा बुरा लगे। (उसके ललाट पर चक्राङ्कितों का तिलक देखकर 'तुम क्षत्रिय हो'। तुम ने अपने मस्तक पर भिखारियों का तिलक क्यों लगाया है और भुजायें क्यों दग्ध की हैं।'

कर्णसिंह—(क्रोध में भरकर) हमारा परम मत है, यदि तुमने उस का खण्डन किया तो हम बुरी तरह पेश आयेंगे।

स्वामी जी शान्त भाव से खण्डन करते रहे।

कर्णसिंह को खण्डन सुनकर आग लग गई। उसने म्यान से तलवार निकाल ली।

स्वामीजी—(कुछ भी भय न करते हुए) 'यदि सत्य कहने से सिर कटता है, तो तुम्हें अधिकार है काट लो। यदि शस्त्रार्थ करना है तो जयपुर आदिके राजाओं से लडो। शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रंगाचार्य को वृन्दावन से बुलवा लो और प्रतिज्ञा लिखा लो कि यदि वह हार जाय तो अपना मत छोड़ दे।'

कर्णसिंह—(क्रोध में)'महाराज रंगाचार्य के सामने तू कीड़े के तुल्य है, तुझ जैसे उसके आगे जूतियां उठाते हैं।'

स्वामी जी—(केवल इतना ही कहा) 'रंगाचारी की मेरे सामने क्या गति है।'

कर्णसिंह महाराज को इसी प्रकार गालियां देने लगा। महाराज पद्मासन लगाये सुनते और हँसते रहे। कहते हैं उसने महाराज पर तलवार चलाई। तब महाराज ने गरज कर उसके हाथ से तलवार छीन ली। कहा 'कहे तो तेरे शरीर में घूंस दूं' और पृथिवी पर टेक कर तोड़ दी। शान्त रहे।

किशन सिंह आदि भक्त खड़े हो गए। कर्णसिंह को फटकारा। वह चला गया। लोगों ने थाने में रिपोर्ट कराने को कहा। महाराज ने कहा

—'इतना ही पर्याप्त है। बुद्धिमान होगा तो फिर ऐसा न करेगा।' महाराज पूर्ववत् शान्ति और मुस्कान के साथ उपदेश करने लगे, मानो कोई घटना हुई न थी।

प्राणों पर आक्रमण होने के समय भी शान्त रहना, प्राण घातक पर भी क्रोध न करना, अपकार के बदले अपकार न करना, द्वेष न रखना। दयानन्द से योगी, दयनन्द से दयालु का ही काम था।'—(यह भावना व्यक्त की है देवेन्द्रबाबू ने जो आर्य समाजी न थे।) सं०

—म० द० जी० च० पृ० १२४.

घर जाते ही कर्णसिंह का एक घोड़ा बहुत अच्छा, जिसे वह बहुत प्यार करते थे, अकस्मात् रोग से मर गया। वर्षा के कारण रामलीला भी पूरी न हो सकी। रावण तक न जल सका। कर्णसिंह के एक शूल उठा। बहुत ही पीड़ा हुई। एक पण्डित ने उससे कहा यह सब तुम्हारे एक महात्मा को दुर्वाक्य कहने का परिणाम है।

कर्णसिंह ने फिर गुण्डों से कहा। उनके मना कर देने पर, सेवकों को स्वामी जी को मारने के लिए भेजा। नौकर तीन बार लौटे। साहस न पड़ा। अन्त में योगी की हुंकार से वहीं औंधे मुंह गिर पड़े। हुंकार सुन ग्राम वाले जाग उठे। ग्राम वालों ने कर्णसिंह को मार देने की ठानी। श्वसुर ने उसको गांव से डेरा डण्डा संभाल भगा दिया।

कर्णसिंह घर जाते ही फिर बीमार हो गया। विक्षिप्त हो गया। एक बड़ा मुकदमा भी हार गया। अपने मत के विरुद्ध मांस मदिरा खाने पीने लगा। उसकी बड़ी दुर्दशा हुई। —देवेन्द्रबाबू। —वहीं

क्षमाशीलता—मुन्शी हरदेव गोविन्द एक कट्टर हिन्दू थे। वे उद्धत और झगड़ालू प्रकृति के थे। एक बार वह फौजी गोरों से भी लड़ पड़े थे। वृन्दावन के जंगल में शिकार खेलने आये। एक दिन उन्होंने दुष्टता वश मुट्ठी में धूल भर कर स्वामी जी के ऊपर डाल दी। स्वामी जी ने कुछ भी नहीं कहा।

—म० द० जी० च० पृ० २६३.

—एक दिन एक मनुष्य ने महाराज के ईन्टें मारीं परन्तु वह उनके लगी नहीं। जेल के क्लर्क एक बंगाली सज्जन ने पुलिस मैन को उसके पीछे भेजा। वह उसे पकड़ लाया। उसने ईन्टें फेंकने से नकार किया। महा-

राज ने उसे क्षमा किया। ऐसे अवसरों को महाराज हंसकर टाल देते थे। जो ऐसे दुष्टों को धमकाना चाहते थे, उन से कह दिया करते थे—'ऐसे लोगों पर क्षमा करके उन्हें जाने दो। इनकी चिकित्सा यही है कि इन्हें सदुपदेश दिया जाय। हमारे साथ यह कोई नई बात नहीं।'

—म० द० जी० च० पृ० ४५६

अजमेर—एक दिन महाराज श्री ने इमदाद हुसेन से कहा कि एक दिन मैं शौच करने बैठा हुआ था। एक मनुष्य नंगी तलवार लिए मेरे पीछे आ खड़ा हुआ। मैंने उससे कहा कि मैं शौच से निवृत्त हो लूं तब मेरा सिर काट डालना। इस पर वह राजी हो गया। जब मैं निवृत्त हो चुका तब मैंने अपनी गर्दन उसके आगे झुका दी। इससे वह ऐसा प्रभावित हुआ कि बिना कुछ कहे ही मुझे छोड़ कर चला गया।

—म० द० जी० च० पृ० ६३६

—एक दिन स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे। कुछ धूर्तों ने एक कलवार और एक कसाई को भेजा, उन्होंने जाकर गुल मचाकर स्वामी जी से कहना आरम्भ किया, "हमारे शराब और मांस के दाम दे दीजिये।"

स्वामी जी ने हंस कर कहा—"बहुत अच्छा! व्याख्यान के पश्चात् तुम्हारा हिसाब भी दूंगा।"

व्याख्यान के पश्चात् स्वामी जी ने एक हाथ से एक का और दूसरे हाथ से दूसरे का सिर पकड़ कर कहा—"बतलाओ तुम्हारे कितने कितने दाम हैं।"

जब उन्होंने देखा कि स्वामी जी उनके सिरों को टकरा कर कचूमर निकाल देंगे तो हाथ जोड़कर उन्होंने क्षमा मांगी। कहा हमें अमुक पुरुष ने बहका कर भेजा था। दयालु दयानन्द तो अपने बुरे से बुरे शत्रु से भी बदला लेना नहीं चाहते थे। उन्हें तुरन्त क्षमा कर दिया।

—म. द. जी. च. पृ. २६६

अपूर्व बल—जोधपुर नगर में एक पहलवान रहता था जिसे अपने बल पर बड़ा घमण्ड था। वह अकेला ही रहट को चला कर अपने स्नान करने के लिये हौज भरा करता था। वह और अन्य लोग भी यही समझते थे कि अन्य कोई इस प्रकार हौज नहीं भर सकता। घटना वश

महाराज भी नगर में पहुंचे। महाराज का नियम था, वह प्रातःकाल नगर से बाहर भ्रमणार्थ जाया करते थे। एक दिन महाराज ने भी उसे हौज भरते देख लिया। उस के पश्चात् एक दिन वायु सेवन के लिए महाराज उधर से होकर गुजरे तो उनके जी में आई कि हौज को भरें। रहट को चलाकर महाराज ने हौज को भर दिया और वायु सेवनार्थ आगे चले गए।

जब पहलवान आया और उसने हौज भरा हुआ पाया तो उसके आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा। साधु महाराज के दर्शन करने वहीं बैठ गया। जब आते दिखाई दिये। दौड कर मार्ग रोक लिया। पूछा—"बाबा, हौज तुमने भरा है?" महाराज ने कहा 'हां'! "हौज भर कर थके नहीं?" महाराज ने उत्तर दिया—"थकना तो दूर, हमारा व्यायाम तक पूरा न हुआ। इसीलिये टहलने के लिये आगे जाना पड़ा।" पहलवान हक्का बक्का रह गया।

—म. द. जी. च. पृ. ७०२.

—एक बार गंगा तट पर विचरते हुए स्वामी जी एक सघन वन में जा निकले। वहां उन्हें सामने से एक सिंह आता हुआ दिखाई दिया। आप सीधा चलते रहे। जब वह उस सिंह के निकट पहुंचे तो उसने उनकी ओर देख कर मुंह फेर लिया और जंगल में घुस गया।

—म. द. जी. च. पृ. ४२१.

—जंगल में मार्ग का उन्हें कोई निदर्शन तक नहीं मिला। सुतराम उस जंगल भूमि में खडे खडे यह सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये। एक आकस्मिक और भारी विपद् उपस्थित हो गई। 'एक बहुत बड़ा काला रीछ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। वह गरज कर अपनी पिछली टांगों पर खडा हो गया और मुझे खाने के लिये मुख खोला। मैं उस समय कुछ क्षण तक स्पन्द-हीन अवस्था में खड़ा रहा। और अपनी लाठी उस के मुंह पर मारने को उठाई। उसे देख कर न जाने किस कारण से वह रीछ डर कर भाग गया।'

कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवैटस्की आदि थियासोफिकल सोसाइटी के सदस्य इस घटना से दयानन्द को योगी मानते हैं। वह कहते हैं क्या योग की शक्ति का प्रयोग किये बिना दयानन्द एक लकड़ी से बड़े भारी रीछ को जो आक्रमण करने पर उद्यत हो, भगा सकते थे? इस में

सन्देह नहीं, इस घटना से दयानन्द की योग शक्ति का परिचय मिलता है।

—म. द. जी. च. पृ ५०.

जालन्धर—एक दिन महाराज विक्रम सिंह ने कहा कि सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य से बहुत बल बढ़ता है। महाराज ने कहा 'यह सत्य है'। सरदार साहब ने कहा—'आप भी तो ब्रह्मचारी हैं परन्तु आप में इतना बल प्रतीत नहीं होता।' महाराज उस समय चुप हो गए। जब सरदार साहब अपनी दो घोड़ों की गाडी पर सवार हुए तो महाराज ने चुपके से जाकर उनकी गाड़ी का पिछला पहिया पकड़ लिया। कोचवान ने घोड़ों को बढ़ाना चाहा, पर वह न बढ़े। उसने चाबुक मारे, घोड़ों ने बहुतेरा बल लगाया, पर टस से मस न हो सके। सरदार साहब ने पीछे मुड़कर देखा तो महाराज को गाड़ी का पहिया पकड़े पाया। महाराज ने मुस्करा कर कहा 'मैंने ब्रह्मचर्य का प्रमाण दे दिया है।'

—म. द. जी. च. पृ. ४३८.

शाप—एक हलवाई पं. चतुर्भुज के बहकाने सिखाने से महाराज से आकर मूर्ति पूजा पर व्यर्थ वितण्डावाद किया करता था। अण्ड बण्ड बका करता था। एक दिन महाराज ने उससे कहा—'तू रोज आकर हमें दिक करता है। हमारा समय नष्ट करता है। ऐसा न किया कर। अन्यथा तेरा अंग भंग हो जावेगा। क्योंकि वेद में मूर्ति पूजा कदापि नहीं है। ऐसा करना महा पाप है।' पर उसने क्रोध में आकर अपशब्द ही कहे। कहते हैं इस घटना के दस बारह दिन पीछे ही उसे गलित कुष्ठ हो गया और वह उसी से मर गया।

—म. द. जी. च. पृ. ५८६.

इन्द्रिय सिद्धि—शाहपुर में महाराज खस की टट्टी के कमरे में पंखे के नीचे बैठकर वेद भाष्य किया करते थे। टट्टी पर जल छिड़कने के लिए एक हौज था। जिसमें प्रतिदिन कुएं से ताजा जल भर दिया जाता था। एक दिन भृत्य ने असावधानी से वा प्रमाद से हौज को साफ न किया और उसमें कुछ बासी जल पड़ा रहा था। उसी में ताजा जल भर कर टट्टी पर छिड़क दिया। इसके कुछ ही देर बाद महाराज ने यह बात जान ली। उन्होंने तत्काल वेद भाष्य का कार्य बन्द कर दिया और कहा उस जल को फेंक दो, हौज साफ कर उसमें ताजा जल भरो और जब तक हौज साफ होकर उस में ताजा जल भरकर टट्टी पर न छिड़का गया वेद भाष्य का कार्य न किया

घीसा लाल चकित हो गया। ऐसी सूक्ष्म योग सामर्थ्य योगीराज में थी···
—म. द. जी. च. पृ० ६६१.

इस प्रकार का योगसामर्थ्य योगीराज दयानन्द में था। महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र के लेखक बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय हैं। प्रकाशक ने अपने वक्तव्य में लिखा है "इन्होंने (देवेन्द्र बाबू ने) आर्य समाजी न होते हुए भी किस प्रकार ऋषि दयानन्द के ऊपर अपना सर्वस्व अर्पन कर दिया।"

भूमिका में देवेन्द्र बाबू ने लिखा है—'हम यद्यपि आर्य समाज के प्रति श्रद्धा का भाव रखते हैं तथापि इस बात के कहने से नहीं रुक सकते कि आर्य समाज का जीवन नितान्त निर्बल है। ऐतिहासिक दृष्टि से नितान्त क्षीण है, उसमें किसी विषय को विचार की तथा विश्लेषण पूर्ण दृष्टि से देखने की शक्ति अत्यल्प है।" —सन् १६१६ में लिखित

हमने एक निष्पक्ष अन्य विश्वासी के उद्धरण ऋषि जीवन सम्बन्ध में दिये हैं, जिससे अविश्वासी तार्किकों को इस अज्ञात जीवनी आत्म चरित्र के ऋषि विश्लेषित, अनुभूत योग प्रकरण पर और ऋषि की उपलब्ध सिद्धियों पर विश्वास हो।

अन्य ३८ योग सिद्धियों का इस आत्मचरित्र में ऋषि ने इस प्रकार उल्लेख किया है—

"जो जो शक्तियां मेरे अनुभव में आयी थीं (गुरुओं के सामने) उनका वर्णन किया था—

१. भूत और भविष्यत् का ज्ञान।
२. सब प्राणियों की भाषाओं का ज्ञान।
३. पूर्व जन्मों का स्मरण।
४. दूसरों के चित्तों का ज्ञान।
५. अन्तर्धान होना।
६. अपने रूप, शब्द, स्पर्श आदि को भी अन्तर्हित करना।
७. मृत्यु काल को जान लेना।
८. बलवान् पशुओं के अनुरुप बल प्राप्त होना।
९. सूक्ष्म अन्तराल में आवृत और अति दूरवर्ती वस्तुओं को देखना।
१०. लोकलोकान्तर भुवनों का जानना।

११. नक्षत्रों को जानना। १२. नक्षत्रों की गतियों को जानना।

१३. शरीर और मन को स्थिर करना। १४. सिद्धपुरुषों को देखना और उनसे बात चीत करना।

१५. वैराग्य लाभ सहायक ज्ञान का प्राप्त करना। १६. स्वचित्त और परचित्त का ज्ञान।

१७. आत्म ज्ञान। १८. दिव्य ज्ञान या सूक्ष्म ज्ञान लाभ करना।

१९. चित्त का दूसरे शरीर में प्रवेश करना। २०. शरीर का अत्यन्त हलका करना।

२१. इच्छा मृत्यु। २१. शरीर को ब्रह्म तेज से उज्ज्वल करना।

२३. सूक्ष्म इन्द्रिय-शक्ति लाभ। २४. आकाश-गमन की शक्ति।

२५. चित्त के आवरण का नाश। २६. महाभूतों का वशीभूत करना।

२७. अष्ट महासिद्धियां—
अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, महिमा, प्रकाम्य, वशित्व, ईशित्व और सत्यसंकल्पता। २८. काय सम्पत्—रूप, लावण्य, बल, दृढ़ता।

२९. शरीर का अटूट भाव। ३०. इन्द्रिय संयम।

३१. अव्याहत गति शक्ति लाभ। ३२. पुरुष और प्राकृतिक भेद ज्ञान

३३. बन्धन से मुक्ति। ३४. अलौकिक विवेक ज्ञान।

३५. सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु ज्ञान। ३६. सर्व वस्तुओं के भेद ज्ञान्।

३७. विवेक ज्ञान, पुरुष प्रकृति भेद ज्ञान। ३८. कैवल्य लाभ।

गुरुओं से मैंने कहा था 'इन सब विभूतियों में से अधिकाँश विभूतियां मेरे अनुभव में आ गई हैं।' किसी गुरु ने क्षुधा पिपासा के विषय में पूछा। मैंने कहा था क्षुधा पिपासा मेरे लिये समस्या के रूप में नहीं है। अब मैं अन्न जल के विना ही महीनों रह सकता हूं।"

"इसी प्रकार और भी बहुत विभूतियों के बारे में मेरे अनुभव हैं।"

पर योगीराज दयानन्द सिद्धियां दिखाते नहीं थे। देखो योगावतरण, पृ. ३७।

ऋषि लिखते हैं—"हम इतना बड़ा कार्य्य योग सिद्धि के बिना नहीं कर रहे हैं।" —म० द० जी० च० पृ० ६३६.

—सहजानन्द को महाराज ने संन्यास धर्म और योग विषय की शिक्षा-दीक्षा देकर प्रचार के लिए बाहर भेज दिया। —वहीं पृ० ६७६.

—'वानप्रस्थ में योगाभ्यास, और योगी होकर संन्यास में प्रचार' यही ऋषि ने संस्कार विधि आदि में आदेश दिया है।

यह सब योग सम्बन्धी कुछ घटनायें इस लिये एकत्र की हैं कि ऋषि की न्याईं सत्य वैदिक धर्म का प्रचार करने वाले नवयुवक योग के लिये सन्नद्ध हो सकें। तीसरो वय वाले ऋषि भक्त योगाभ्यास कर सन्यास ले और वैदिक धर्म के प्रचार के योग्य बन सकें। टेपरेकार्डों या फोनोंग्राफ के रेकार्डों के समान धनलोलुप गृहस्थ अनार्ष विद्वानों से प्रचार कार्य नहीं हो सकता। न ही विद्याशून्य योग पराङ्मुख धनी वर्ग वेद प्रचार कर सकता है। इसी लिये ऋषि दयानन्द ने जो लिखा उसे पढ़कर आचरण में लाने की आवश्यकता है। सिद्ध योग लाभ किये विना केवल गैरिक वस्त्र धारण करने वाले रंगे युवा संन्यासियों से भी योगी का अधूरा काम पूरा न होगा।

—

वेदों में योग उपदेश

हिरण्यगर्भ-प्रजापति-ब्रह्म का योग-उपदेश

ओम्—युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।
अग्निे ज्योति निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ १ ॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे स्वर्ग्याय शक्त्या ॥ २ ॥

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
विहोत्रा दधे वयुनाविदेकऽ इन्
मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४ ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभि र्विश्लोक एतु पथ्येव सूरः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥५॥

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा
देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो
रजाँसि देवः सविता महित्वना ॥ ६ ॥

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥७॥

इमं नो देव सवित र्यज्ञं प्रणय देवाव्यँ
सखि विदँ सत्राजित न्धनजित ँ स्वाजितम्
ऋचास्तोसँ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं
बृहद् गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ॥८॥

—शुक्ल यजुः० अ० ११ । मं० १—८ ॥

योगी दयानन्द का भाष्य—(१) (सविता) ऐश्वर्य का चाहने वाला मनुष्य (तत्त्वाय) परमेश्वर, आत्मा प्रकृति के तत्त्व ज्ञान के लिये (प्रथमम्) पहले (मनः) मन को वृत्तियों-विचारों को तथा (धियः) ज्ञानांश को (युञ्जानः) योगके अभ्यास में लगाता हुआ-समाहित करता हुआ (अग्नेः) परमात्मा के

(ज्योतिः) प्रकाशमय (भर्गः) स्वरूप को (निचाय्य) निश्चित जान के (पृथिव्याः अधि) भूमियों में, चित्त की सब अवस्थाओं में (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे।

भावार्थ—यो जनो योगं चिकीर्षेत् सयमादिभिः क्रिया कौशलैश्चान्तः करणं पवित्रीकृत्य तत्त्वानां विज्ञानाय प्रज्ञां समज्यैतानि गुण कर्म स्वभावती विदित्वोपयुञ्जीत। पुनर्यत् प्रकाशकानाँ सूर्यादीनां प्रकाशकं ब्रह्म अस्ति, तद्विज्ञाय स्वात्मनि निश्चित्य सर्वाणि स्वापर प्रयोजनानि साध्नुयात्॥

—जो मनुष्य योग का ज्ञान करना चाहें, वह यम-नियमों को पूर्णतया पालन करें। तप स्वाध्याय और ईश्वरणिधान से अन्तःकरणो को पवित्र करके तत्त्वों पाँचों भूतों को तत्व से जानने के लिए प्रज्ञालोक को युक्त करें और इन सबको तत्त्वतः जान कर व्युत्थान काल में वैसी अनासक्त हो ही व्यवहार करें। फिर समाधि में सूर्यादि को प्रकाशित करने वाले परब्रह्म को साक्षात् करें। उसको जान आत्मा में उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापकता का निश्चय करें। अपने और दूसरों के परम प्रयोजन मोक्ष को सिद्ध करें।

सन्ध्या में भी योगिराज दयानन्द ने कहा है—'धर्मार्थं काम मोक्षाणां सद्यः सिद्धि र्भवेन्नः।' धर्म से धन की, धन से तृप्त वासनाओं की और मोक्ष की तत्काल सिद्धि प्राप्त हो अर्थात् सन्ध्या में समाधि लग जावे और चरम मोक्षानन्द उपलब्ध होवे॥ १॥

२—हे योग के इच्छुको! जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन) समाहित (मनसा) मन से और (शक्त्या) ज्ञान शक्ति से, ज्ञानांश से (देवस्य सवितुः) सकल संसार को उत्पन्न करने वाले देव के (सवे) ऐश्वर्य में—सर्वाधिष्ठातृत्व स्वरूप में (स्वर्यथाय) अधिकाधिक तेजोमय स्वरूप को धारण करते हैं वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो॥

भावार्थ—यदि मनुष्याः परमेश्वरस्य सृष्टौ समाहिताः सन्तः योगं तत्त्वविद्यां च यथाशक्ति सेवेरन्, तेषु प्रकाशितात्मानः सन्तो योगम् अभ्यसेयुः, तर्हि सिद्धीः कथं न प्राप्नुयुः॥

—यदि मनुष्य परमेश्वर की सृष्टि में रहते हुए भी समाहित होकर योग का और तत्त्व विद्या—विवेक ख्याति का पूर्ण शक्ति और ज्ञान से अभ्यास करें तो उन सब में रहते हुए भी विदेही होकर मोक्षार्थी होते हुए योग का पूर्णता के लिये अभ्यास करें तो योगसिद्धियां क्यों न प्राप्त होंगी॥ २॥

३—(सविता) प्रज्ञा लोकी योगी (युक्त्वाय) परमात्मा में युक्त होकर (धिया) बुद्धि से-अपनी चेतना से (दिवम्) विद्या को-सब पदार्थों के ज्ञान को (स्वः) सुख को—आनन्द को (यतः) प्राप्त करने वाला (बृहत्) बड़े (ज्योतिः) विज्ञान को (करिष्यतः) प्राप्त करेगा। (तान् देवान्) उन दिव्य गुणों को (प्रसुवाति) नया अभ्यासी उत्पन्न करे।

भावार्थ—ये योगम् अभ्यस्यन्ति ते अविद्यादिक्लेशानां निवारकान् शुद्धान् गुणान् जनयितुं शक्नुवन्ति। य उपदेशकाद्योगं प्राप्य एवम् अभ्यसेत् सोऽप्येतान् प्राप्नुयात्।

—जो योगी योग का अभ्यास करते हैं वे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश-मृत्युभय नामक पाँचों क्लेशों को, अविद्याओं को दूर करते हैं और शुद्ध गुणों को सत्वगुण जनित विवेक ख्याति को उत्पन्न करते हैं।

जो योगोपदेशक योगी सन्न्यासी जनों से योग विद्या को प्राप्त कर इस प्रकार अभ्यास करता है वह भी अविद्याओं को दूर करता है और विवेकख्याति को प्राप्त करता है।

इसका अभिप्राय यह है कि जीव को परमेश्वर की उपासना नित्य (हर घड़ी) करनी उचित है। अर्थात् उपासना-समय में सब मनुष्य अपने मन को उसी में स्थिर करें।

४—(विप्राः) ईश्वरोपासक (होत्राः) मेधावी योगी जन (बृहतः) सबसे बड़े (विपश्चितः) सर्वज्ञ (विप्रस्य) साधक (मनः) मन को (युञ्जते) परमेश्वर में ठीक ठीक युक्त करते हैं, समाहित करते हैं (उत) और अपनी बुद्धि-वृत्ति अर्थात् ज्ञान को (ज्ञानांश को) (युञ्जते) सदा परमेश्वर में स्थिर करते हैं (अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान अखण्ड बना रहता है जो) ईश्वर (विदधे) सब जगत् को धारण करता है और उसका विधान करता है (वयुनावित् एक इत्) जो अकेला ही बिना किसी सहायक के सब जीवों के शुभ-अशुभ ज्ञान का विचारों का जानने हारा है। (सवितुः देवस्य) उस रचना करने हारे देव की (मही परिष्टुतिः) बड़ी से बड़ी स्तुति करें। उससे बड़ी किसी दूसरे की नहीं। वही सबका राजा विराज है। उसी का नाम लें, उसी का ध्यान करें। (मही) दीर्घकाल तक, निरन्तर, बिना व्यवधान के सत्कार पूर्वक करें। श्रद्धा से करें।

भावार्थ—ये युक्ताहारविहार एकान्ते देशे परमात्मानं युञ्जते, ते तत्वज्ञानं प्राप्य नित्यं सुखं लभन्ते।

—जो योगियों का-सा आहार—जल पर या हवा पर ही रहने वाले होकर एकान्त—बियाबान जंगल प्रदेश में परमात्मा में समाहित होते हैं, लगातार समाहित रहते हैं। वे प्रज्ञालोक द्वारा तत्त्वज्ञान को जान लेते हैं और शाश्वत सुख को, अखण्ड आनन्द को प्राप्त करते हैं। मही परिष्टुति का यह स्वाभाविक परिणाम है। ४॥

५—(अमृतस्य पुत्राः) हे मोक्ष मार्ग का पालन करने वाले योगी मनुष्यो: (शृण्वन्तु विश्वे) तुम सब सुनो (ये धामानि दिव्यानि आतस्थुः) जो दिव्य मोक्ष सुखों को, समाधि के आनन्द को प्राप्त कर चुके हो जब तुम (पूर्व्यम्) सनातन (ब्रह्म) ब्रह्म को (नमोभिः)सत्य प्रेम भाव से अपने आत्मा को स्थिर करके, नमस्कार कर नाम (ओं) स्मरण कर उपासना करोगे तब मैं तुमको आशीर्वाद दूंगा (श्लोकः) सत्य कीर्ति—सत्य-प्रतिष्ठा होने पर अमोघ वाग् (वां) तुम दोनों योगोपदेशक और योगाधिकारी को (वि एतु) प्राप्त हो। (सूरेः पथ्येव) जैसे परम विद्वान्—ऋतंभरप्रज्ञ को धर्म मार्ग—गुण गुणी ज्ञान प्राप्त होता है (युजे)मैं तुमको उपासना योग में युक्त करता हूं, सन्देह मत करो।

भावार्थ—योगं जिज्ञासुभिराप्ता योगारूढा विद्वाँसः संगन्तव्याः। तत्संगेन योगविधिं विज्ञाय ब्रह्म अभ्यसनीयम्। यथा विद्वत्प्रकाशितो धर्म मार्गः सर्वान् सुखेन प्राप्नोति, तथैव कृतयोगाभ्यासानाम् सङ्गाद् योगविधिः सहजतया प्राप्नोति।

नहि कश्चित् एतत्संगम् अकृत्वा ब्रह्माभ्यासेन विनाऽऽत्मा पवित्रो भूत्वा सर्वं सुखम् अश्नुते तस्माद् योगविधिना सहैव सर्वे पर ब्रह्मोपासताम्।

—योग के जिज्ञासुओं को योगारूढ़ विद्वानों की सेवा में जाना चाहिये। उनके संग रह कर, योग विधि को जान कर,ब्रह्म ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। जैसे विद्वानों का बताया धर्म मार्ग सबको सुख से मिल जाता है, वैसे ही योगियों की संगति से योग विधि सरलता से मिल जाती है। कोई भी आत्मा योगियों को संग किये विना और ब्रह्माभ्यास के विना पवित्र होकर सर्व सुख आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिये योगविधि के साथ-साथ सब परब्रह्म की उपासना करें॥५॥

६—हे योगी पुरुषो ! (यस्य,देवस्य) जिस देवाधिदेव की [महिमानम्] महिमा को [प्रयाणम्] व्यापकता को (अन्ये देवाः) अन्य विद्वान लोग (अनुययुः) प्राप्त होवें [यः] जो [देवः] देव [ओजसा महित्वना] अपने बल और महिमा से [सविता] सब संसार का निर्माण करता है [पार्थिवानि] पार्थिव सब लोक लोकान्तरों को आकाश में ही [विममे]

रचा है [स एतशः इत] वही उन को नियम में चला रहा है। यह सब सम्प्रज्ञातसमाधि में प्रत्यक्ष करो।

भावार्थ—ये विद्वांसः [illegible] जगतोऽन्तरिक्षेऽनन्तबलेन धर्तारं निर्मातारं सुखप्रदं शुद्धं सर्वशक्तिमन्तमीश्वरम् उपासते त एव सुखयन्ति नेतरे॥

—जो जानकार योगीजन अन्तरिक्ष में अपने अनन्त बल से लोक लोकान्तरों को बनाने वाले, धारण करने वाले, शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान् अनन्त सुख देने वाले अनन्त भगवान् की उपासना-योग से उस में बैठते हैं; उन को ही सच्चा सुख मिलता है दूसरों को नहीं। सांसारिक भोगों में सुख नहीं। भगवान् ही अनन्त सुख का भण्डार है। योगाभ्यास से उसी में रमण करना चाहिये॥६॥

७—[देव सवितः] हे सत्यशुद्ध योग विद्या से उपासना करने योग्य परमेश्वरः [नः] हम योगियों के [यज्ञम्] योगयज्ञ को—सुखों को प्राप्त कराने हारे योग व्यवहार को [प्रसुव] उत्पन्न कीजिये [गन्धर्वः] पृथिवी आदि लोक लोकान्तरों के धारक [दिव्यः] दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाले [केतुपूः] विज्ञान से पवित्र कराने हारे आप [नः] हमारे [केतम्] ज्ञान को [पुनातु] पवित्र कीजिये, प्रज्ञालोक तक पहुँचा दीजिये जिसके द्वारा प्राप्त ज्ञान अन्य ज्ञानों को फीका कर दे, मन्द करे, विशुद्ध ज्ञान हो सके [वाचस्पतिः] वेद के स्वामिन [नः] हमारी वाणी को [स्वदतु] स्वादु-फल वाला कर दीजिये [illegible] कर दीजिये, सर्वभूत प्राणियों की वाणी को समझ [illegible]।

भावार्थ—[illegible] हाय ईश्वर इव सर्वैः सह सुहृद्[illegible]।

—जो पुरुष [illegible] की उपासना, और योग विद्या को [illegible] प्रयत्नपूर्वक प्राप्त [illegible] करते हैं वे सब योग ऐश्वर्यों— [illegible] को प्राप्त हो, अपने आत्मा को शुद्ध कर सकते हैं। योग विद्या को सिद्ध कर सकते हैं। वे सत्यवादी होके सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त होते हैं॥७॥

८. हे [illegible] देव! [नः] हमारे [इमं यज्ञं] इस योग [illegible] रक्षक वर्धक, शोधक, [सखिविदम्] [illegible] [सत्राजितम्] सत्य व तानों तत्त्वों का जय कराने वाले, [धनजितम्] धन आदि अविद्या भावों पर विजय कराने वाले, [illegible] अनन्त आनन्द दायक [यज्ञम्] योग यज्ञ को [प्रनय] भली प्रकार उत्तमता से आगे बढ़ाइये। [ऋचा] समाधि में

साक्षात् होने वाली ऋचाओं के द्वारा, (स्तोमम्) गुण गरिमामय स्तवन यज्ञ को (समर्धय) भली प्रकार बढ़ाइये, समर्थ कीजिये। (गायत्रेण) तेरे आन्तर गान से (बृहद्रथन्तरं) बड़े योग रथ को बढा। (गायत्र वर्त्मनि) उपासना मार्ग में-योग मार्ग में (स्वाहा) अपने को मैं अर्पित करता हूं।

भावार्थ— ये जना ईर्ष्यादिदोषान् त्रिहाय ईश्वरः इव सर्वैः सह सुहृद्भावम् आचरन्ति ते संवर्धितुं शक्नुवन्ति।

—जो मनुष्य ईर्ष्या द्वेष आदि दोषों को छोड़कर ईश्वर के समान सब जीवों के साथ मित्रभाव रखते हैं—सांसारिक संग्रह के कारण द्वेष नहीं करते, ईश्वर पुत्रों-आत्माओं से समान भाव से प्रेम करते हैं, वे संपत् को-योगविभूतियों को और उन से भी विरक्त हो परमानन्दमय भगवान् रूप संपत् को प्राप्त होते हैं ॥८॥

उपनिषत् में योगविधान

दूसरे अध्याय के आरम्भ के पांच मन्त्र देकर श्वेताश्वतर ने आगे यह सुन्दर योगोपयोगी मन्त्र दिये हैं :—

अग्निर्यत्राभिमथ्यते, वायुर्यत्राभिरुध्यते।
सोमो यत्रातिरिच्यते,तत्र संजायते मनः ।६।

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम्।
तत्र योनिं कृण्वसे नहि ते पूर्वमक्षिपत् ।७।

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं,
हृदोन्द्रियाणि मनसा सनिवेश्य,
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्
स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ।८।

प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तं वाहनमेनम्,
विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ।९।

समे शुचौ शर्करा वह्नि बालुका
विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।

मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने
गुहानिवाताश्रयणं प्रयोजयेत् ।१०।

नीहार धूमा र्कानिलानलानाम्
खद्योत विद्युत् स्फटिक शशिनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि,
ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ।११।

पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पंचात्मके योग गुणे प्रवृत्ते,
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।१२।

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वम्
वर्ण प्रसादं स्वरसौष्ठवं च ।
गन्धः शुभो मूत्र पुरीषमल्पं
योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ।१३।

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तम्
तेजोमयं भ्राजते तत्सुधातम्
तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही,
एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ।१४।

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धम्
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।१५।

एषो ह देवप्रदिशोऽनुसर्वाः
पूर्वो ह जातः सहगर्भेऽन्तः ।

स एष जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ् जनस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।१६।
यो देवोऽग्नौ योऽप्सु
यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु
तस्मै देवाय नमो नमः ।१७।

६. जब परमदेव परमात्मा को घृत की नाईमथ कर निकालने की भावना प्रबल हो जाती है, और श्वास-प्रश्वास की गति वश में हो जाती है, जब धारणा ध्यान की अवस्था केवल ओम् सोम शेष रह जाता, ओम् का ज्ञानांश रह जाता है, तब प्रज्ञालोक से अमोघ मनन उत्पन्न होता है।

७. ब्रह्मज्ञान सम्पन्न आत्मा को सनातन ब्रह्म से युक्त कर। योग-साधक ! ब्रह्म को अपना सतत वास बना तेरे कर्म तुझे जन्म-मरण में नहीं खेंचेंगे। तू मुक्त हो जायगा—(पुरुष एव सविता जै. उ. ४-२७ योनिगृहम् गृहनाम-निघ ३-४ पूर्व-पूर्व कर्म।

८. छाती, शिर और मेरुदण्ड को सीधा रख कर हृदय में शून्य में इन्द्रिय और मन को धारण कर प्रत्याहार सिद्ध करे। धारणा से ध्यान, ध्यान से समाधि में ब्रह्म-ओम् ज्ञांनश को नौका से अविद्या, अस्मिता राग, द्वेष, मृत्युभय को भयंकर प्रबल धाराओं को ब्रह्मज्ञानी पार करे।

९. प्राणों की आने-जाने की गति को समाप्त कर, वाणी, काया, मन को चेष्टा रहित कर, प्राणों का अभाव हो जाने पर, नासिका मूल से बुद्धिकेन्द्र में स्थित हो जावे। घोड़ों के समान चंचल इन्द्रियों से युक्त मन के रथ को सावधानी से जागरूक हो कर वश में रखें। साधना में ब्रह्म से बाहर न जाने दे।

१०. समतल शुद्ध पवित्र स्वच्छ, रोडे-कंकरों-अग्नि की धूनी, उड़ती रेणुका से रहित; शब्द और जल का आश्रय लेने वाले जंगली जानवरों से शून्य; मनोरम, नयनललाम, शान्त निर्वात गुहा में साधना करें।

११. कोहरा, धूआँसा, सूर्य बिम्बसा, वायु सी, अग्नि सी, जुगनुसा, बिजली की चमक सी, स्फटिक सी आभा चन्द्र बिम्ब-सा ध्यान के स्थिर होने पर आन्तर दृष्टि ध्यान में आने लगे तो ध्यान की अवस्था ब्रह्म-ध्यान के योग होने लगी है, इस बात को व्यक्त करते हैं।

१२. पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश पाँचों की पाँचों तन्मात्राओं दिव्य गन्ध, दिव्य रस, दिव्य रूप, दिव्य स्पर्श, दिव्य शब्द में किसी का वा सब का अनुभव होने लगे तो ऐसे योगी को रोग नहीं सतायेगा, बुढ़ापा भी नहीं आयेगा और उसका शरीर निरन्तर दीर्घकालीन अभ्यास से योगमय हो जायगा।

१३. हलकापन, सदास्वास्थ्य, विषयों का निरास, रंग का निखार, स्वर में माधुर्य, शरीर में सुन्दर गन्ध, मूत्र पुरीष की स्वल्पता होने लगती हैं। ये योग में प्रवेश को बताती हैं।

१४. दर्पण जैसे मिट्टी-धूल धोने पर चमक उठता है वैसे ही अविद्या क्लेशों से आत्मतत्त्व को विशुद्ध कर लें तो योगी शोक रहित हो जाता है। यही योगी की कृतार्थता है।

१५. दीपक को देखने के लिये किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार जब योगी आत्मा को आत्मा से ही जान लेता है तब परमात्मतत्त्व को जो आत्मा की सूक्ष्मता में निहित है भी जान लेता है। वह अजन्मा है। अटल ध्रुव कूटस्थ है। सब तत्त्वों से असंग, विशुद्ध तत्त्व है। उसको जान लेने पर कर्मविपाक से मुक्त हो जाता है। कर्म दग्ध बीज हो जाते हैं। फल देने में असमर्थ हो जाते हैं।

१६. यह देवाधिदेव परमदेव सर्वव्यापक है। पूर्णरूप से अभिव्यक्त है। वही प्रकृति में व्याप्त है। विकृति वही करता है। सृष्टि होने पर उस की सत्ता का भान भक्तों को होता है। सर्वज्ञ, सर्वमुख, जन-जन में प्रत्यक् रूप से विराजमान है।

१७. जो देवाधिदेव अग्नि में, जल में व्याप्त है। समस्त संसार में प्रवेश किये है। जो ओषधियों में है, वनस्पतियों में है - सर्वत्र एकरस है। उस देवाधिदेव को बार बार नमस्कार।

दर्शनों में योग विधान

सांख्य दर्शन में योग-साधना

सांख्य दर्शन नास्तिकता का प्रतिपादक नहीं योग का प्रतिपादक है। विस्तृत उल्लेख है योग का ब्रह्म प्राप्तिका!

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा ! क्लिष्टा ।२-३३।

वृत्ति पाँच प्रकार की है। क्लिष्ट और अक्लिष्ट। १. विद्यादि पांच क्लेशों को उत्पन्न करने वाली और २. विवेक कराने वाली, जिनसे

तमोगुण, रजोगुण और सत्व गुण का कार्य समाप्त हो जाता है, विशुद्ध आत्मा, परमात्मा, अपना, और प्रकृतिका अलग ज्ञान प्राप्त करता है। योग में १.५ देखें।

तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः ।२-३४।

वृत्तियों के निवृत्त हो जाने पर आत्मा का प्रकृति से उपराग—लगाव शान्त हो जाता है। आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। योग में "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" ॥ १।३ ॥

कुसुमवच्च मणिः ।२-३५।

आत्मा मणि-बिल्लौर के समान निर्मल है। फूलों पर मणि-बिल्लौर रंग वाला दिखता है। आत्मा प्रकृति में रमता है। तो प्रकृति-जैसा हो जाता है,प्रकृति को ही आया समझ लेता है। बिना पुष्पकों के वह स्वच्छ है। देखो यो. १. ४१

पुरुषार्थ करणोद्भवोप्यदृष्टोल्लासात् ।०.३६।

इन्द्रियों से पुरुषार्थ, आत्मा अदृष्ट के उदय से करता है।

धेनुवद्वत्साय ।०.३७।

बछड़े के लिए गौ जैसे दूध देती है ऐसे ही इन्द्रियां मानो आत्मा के लिये व्यवहार करती हैं।

करणं त्रयोदशविधमवान्तरभेदात् ।२३८।

५ कर्मेन्द्रिय + ५ ज्ञानेन्द्रिय + ३. मन बुद्धि अहंकार = १३

इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात् कुठारवत् ।२.३९।

कुल्हाड़े के काटने में न काटने वाला दस्ता भी काटने में अत्यन्त सहायक है ऐसे ही इन्द्रियां भी साधकतम हैं। पर वास्तव में ज्ञान आत्मा ही प्राप्त करता है।

द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद्भृत्यवर्गेषु ।२.४०।

दोनों-ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में मन ही प्रधान है। जैसे लोक में भृत्यों में एक ही प्रधान होता है। शेष अप्रधान-गौण होते हैं।

अव्यभिचारात् ।२।४१।

मन के साथ हुए विना कोई भी कर्मेन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रिय काम नहीं कर सकती। यह व्यापक नियम है।

तथाऽशेष-संस्काराधारात् ।२।४२।

और इसलिए कि मन में ही सब कर्मों के संस्कार रहते हैं।

स्मृत्यनुमानाच्च ।२।४३।

मन में संस्कार रहते हैं इसीलिये किसी बात की स्मृति होती है। यही मन में संस्कार रहने का हेतु है।

सम्भवेन्न स्वतः ।२।४४।

स्मृति विना संस्कारों के अपने आप नहीं हुआ करती है। अतः मन में संस्कारों से ही स्मृति होती है।

आपेक्षिको गुण प्रधान भावः क्रिया विशेषात् ।२।४५।

इन्द्रियों का गौण होना और मन का प्रधान होना अपेक्षा से है। इन्द्रियाँ मन की अपेक्षा करती हैं। विना मन के वे कुछ नहीं कर सकतीं। मन में ही क्रिया विशेष है। इसलिये उस की क्रिया से इन्द्रियाँ प्रवृत्त होती हैं। विना मन के नहीं।

तत्कर्माजितत्वात् तदर्थमभिचेष्टा लोकवत् ।२।४६।

आत्मा के लिये इन्द्रियाँ कर्म करती हैं। आत्मा के लिये ही उन का व्यवहार होता है। लोक में भी ऐसे ही व्यवहार होता है। प्रधान धनी आदि पुरुष किराया देकर सवारी कर लेते हैं। उस समय वे उस का ही कार्य करती हैं; अपना कुछ कार्य नहीं होता।

समान कर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवत् लोकव त्।२।४७।

आत्मा का दसों इन्द्रियों और मन के साथ समान सम्बन्ध है। उस में आत्मस्थ बुद्धि की ही प्रधानता है। लोक में भी जो अत्यन्त अन्तरंग होता है उसकी ही प्रधानता होती है। अतः आत्मज्ञान की प्रधानता है।।

आविवेकाच्च प्रवर्त्तनम् अविशेषाणाम् ।३।४।

जब तक आत्म तत्त्व और प्रकृति का विवेक नहीं होता। तभी तक अविशेष से इन सब ही की प्रकृति के लिये प्रवृत्ति है। विवेक होने पर प्रकृति के लिये दौड़ समाप्त हो जायगी।

उपभोगादितरस्य ।३।५।

स्थूल शरीर की प्रवृत्ति कर्मों के उपभोग काल तक रहती है।

सम्प्रति परिष्वक्तो द्वाभ्याम् ।३।६।

इस समय तो यह दोनों स्थूल और सूक्ष्म शरीर मिल कर भोग सम्पादन कर रहे हैं।

मातृपितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न

माता पिता से ही स्थूल शरीर प्रायः उत्पन्न होते हैं। सृष्टि के आरम्भ में अयोनिज तथा इस समय भी स्वेदज,उद्भिज शरीर विना माता पिता के होते हैं। दूसरा सूक्ष्म शरीर तो परमात्मा ही देता है, माता-पिता से नहीं मिलता।

पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वम् भोगादेकस्य नेतरस्य ।३।८।

भगवान् के बनाये लिंग-शरीर से ही सुख-दुःख भोग होता है, स्थूल शरीर से नहीं, सूक्ष्म शरीर के निकल जाने पर स्थूल मृत हो जाता है। भोग नहीं कर सकता।

सप्तदशैकं लिंगम् ।३।९।

लिंग शरीर १७ तत्त्वों का है। वही एक रहता है। जन्म-जन्मान्तर में भी पलटता नहीं। स्थूल शरीर मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है। जन्म पर दूसरा मिलता है। ११ इन्द्रियाँ ५ तन्मात्रायें और बुद्धि की गणना है।

अणुपरिमाणं तत्कृतिश्रुतेः ।३।१४।

लिंग शरीर अणु परिमाण है। स्थूल शरीर से सूक्ष्म है।

पाँचभौतिको देहः ।३।१७।

यह स्थूल देह जो दिखता है (१ पृथिवी २ जल ३ अग्नि ४ वायु ५ आकाश) इन पाँच भूतों से बना है।

न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ।३-२०।

चेतनता पांच भूतों के मिलने से नहीं आई है, क्योंकि कोई भूत चेतन नहीं, फिर सब मिलने पर भी चेतना कहाँ से आती। चेतन आत्मा भिन्न है।

ज्ञानान्मुक्तिः ।३।२३।

प्रकृति-पुरुष विवेक से ही मुक्ति होगी । अन्य उपाय नहीं है ।

बन्धो विपर्ययात् ।३।२४।

अज्ञान से, अविवेक से या अविद्या से ही बन्ध है । आत्मा शरीर में कैद है ।

नियत कारणत्वान्न समुच्चय विकल्पौ ।३।२५।

मुक्ति का विवेक ही निश्चित कारण है। अन्य किसी भी साधन के साथ इसका सम्मिश्रण नहीं है । न ही अन्य विकल्प है । केवल विवेक ज्ञान ही मुक्ति का कारण है ।

भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत् ।।

अष्टांग योग से अविद्यादि पाँच क्लेशों से छूटे शुद्ध ध्यानी की भागवत भावनाके ध्यान समाधि में परिणत हो जाने पर सब आत्मसात् हो जाता है, स्वाभाविक प्रकृतिवत् हो जाता है । इसी को योग में संयमजय कहा है ।

रागोपहतिर्ध्यानम् ।३।३०।

प्रकृति के राग का हटना ही ध्यान का मूल है । वैराग्य से ही ध्यान सिद्ध होता है ।

वृत्ति-निरोधात् तत्सिद्धिः ।३।३१।

सूत्र २-३३ में बताई वृत्तियों के रोकने से ही ध्यान की सिद्धि होगी। जितना-जितना वैराग्य बढ़ेगा उतना-उतना ध्यान गहरा होगा ।

धारणा-स्व-स्वकर्मणा तत्सिद्धिः ।३-३२।

धारणा शब्द जाप छूट कर केवल ज्ञानांश के शेष रह जाने पर दीर्घकालीन आसन सिद्ध होने पर और स्वकर्म--अपने जप, तप और ईश्वर प्रणिधान तथा अन्य यम-नियमों की साधना के परिपाक से ध्यान सिद्ध होगा ।

निरोधश्छर्दि-विधारणाभ्याम् ।३।३३।

चित्त वृत्तियों का निरोध प्राण के निकाल देने पर या अन्दर ही धारण करने पर ही होगा । बाहर निकाल कर अन्दर लेना न पड़े, जैसे उल्टी निकालने पर फिर नहीं आती है । ऐसे ही प्राण अन्दर आने पर

बाहर न जावे तो वित्तवृत्तियों का निरोध हो जायेगा। प्राण के आधार पर ही चित्त काम करता है।

स्थिरसुखमासनम् ।३।३४।

स्थिर और सुख वाला आसन होता है। शरीर स्थिर रहे। निचेष्ट रहे और कष्ट न माने तब ही आसन है।

स्वकर्म स्वाश्रम विहितकर्मानुष्ठानम् ।३।३५।

अपने आश्रम के विहित कर्मों का अनुष्ठान करते हुए ध्यान साधना ही स्वकर्म है। सब आश्रमों में ध्यान करे। वानप्रस्थ में सारा ही समय ध्यान में रहे।

वैराग्यादभ्यासाच्च ।३।३६।

पर, अपर वैराग्य से और अवृत्तिक साधना से वृत्तिनिरोध होता है। वैराग्य के साथ ओं जाप द्वारा ईश प्रणिधान से ध्यान समाधि सिद्ध होते हैं।

विपर्यय-भेदाः पंच ।३।३७।

अविद्या के पाँच भेद हैं।

अशक्तिरष्टाविंशतिधा ।३।३८।

असामर्थ्य २८ प्रकार की है पाँचों वृत्तियाँ पाँच प्रकार के विपर्यय से २५ प्रकार की और काम, क्रोध, लोभ तीन मिला कर २८ प्रकार की अशक्ति है। मोह अविद्या में आ ही गया।

तुष्टिर्नवधा ।३।३९। आध्यात्मिकादि भेदान्नवधा तुष्टि ।३।४३।

आध्यात्मिकादि भेद से तुष्टि नौ प्रकार की है। आध्यात्मिक-आधिदैविक, आधि भौतिक, सात्विक, राजस, तामस भेद से तीन तीन प्रकार की नौ तुष्टि है। उनसे मन को तोष होता है।

सिद्धिरष्टधा ।३।४०। ऊहाभिदिः सिद्धिः ।३।४४।

अपने आप पढ़कर ज्ञान प्राप्त करना 'तार' नामक सिद्धि है। शब्द से ही बिना पढ़े ज्ञान लेना, 'सुतार' सिद्धि है। बिना शब्द के ज्ञान होना 'ऊहा' सिद्धि का नाम 'तारतार' है। बिना ऊहा के ही प्राप्ति हो जाना 'रम्यक' नाम की सिद्धि है। बाह्यपदार्थों के बिना सदा शुद्धि का नाम 'मुदित' है। तीनों तापों का नाश होना तीन सिद्धियां ये आठ सिद्धियाँ हैं।

आब्रह्म स्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात् ।३।४७।

विवेक होने पर ब्रह्म से लेकर स्थावर तक की भोगार्थ बनी सृष्टि योगी जन के लिए समाप्त हो जाती है। योगी मरण जन्म से छूट जाता है।

स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता ।३।५६।

वह परमात्मा सर्वज्ञ और सर्व-निर्माता है।

ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ।३।५७।

ऐसे ईश्वर की सत्ता स्वयं सिद्ध है।

प्रधान-सृष्टिः परार्थस्वतोऽप्यभोक्तृत्वाद् उष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ।३।५८।

मूलप्रकृति स्वयं तो अभोक्ता है, जड है। इसलिए उससे बनी सृष्टि परार्थ है। जीव के बन्धन के लिए होती है। जैसे ऊँट दूसरों के लिए ही केसर ढोता है।

विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके ।३।६३।

विवेकी को ज्ञान हो जाने पर उसके लिए प्रधान की सृष्टि रचना निष्प्रयोजन है। जैसे पाक हो जाने पर रसोइया निवृत्त हो जाता है। विवेकी को सृष्टि का ध्यान ही नहीं रहता।

इतर इतरज्जहाति तद्दोषात् ।३।६४।

प्रकृति के दोष जान लेने पर दोष दर्शन से पर वैराग्य की प्राप्ति हो जाने पर पुरुष प्रकृति से पराङमुख हो जाता है।

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः ।३।६५।

पुरुष और परम पुरुष दोनों में से एक पुरुष—आत्मा की प्रकृति से उदासीनता हो जाना अपवर्ग है। परमात्मा तो सृष्टि-रचना करता ही रहता है।

नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम् ।३।६८।

आत्मा चेतन, प्रकृति जड़, दोनों एक दूसरे की कोई अपेक्षा नहीं नहीं रखते। दोनों की चेतना और जड़ता में एक दूसरे की अपेक्षा स्वतः सिद्ध हैं। प्रकृति उपकार करती है यह मान बैठना अविवेक के कारण है। अविवेकी अविद्याग्रस्त ही प्रकृति में फंसता है।

नर्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात् ।।३।६९।

नर्तकी नाच दिखाकर उपरत हो जाती है। उसी प्रकार अविद्यादि से ग्रस्त व्यक्ति प्रकृति में फँसता है। अविद्या के विवेक के चरितार्थ होने से सफल होने पर छुटकारा हो जाता है।

दोष बोधेऽपि नोपसर्पणम् प्रधानस्य कुलवधूवत् ।। ३।७० ।।

प्रधान प्रकृति के दोषों को जान लेने पर पुरुष प्रकृति की ओर नहीं देखता। जैसे कुलवधू किसी को नहीं देखती उस योगी का सच्चिदानन्द घन ही देखने योग्य दृश्य रह जाता है।

नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते ।३।७१।

पुरुष न सदा बद्ध है न सदा मुक्त। अविवेक से बन्ध होता है। विवेक से मोक्ष। मोक्ष से आना-जाना बना रहता है।

प्रकृतेरांजस्यात् स संगत्वात् पशुवत् ।३।७२।

प्रकृति की अनुरक्ति से बन्ध हो जाता है, जैसे रस्सी की अनुरक्ति से पशु बँधा रहता है। रस्सी का खुल जाना ही मुक्ति है।

रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवत्, विमोचयत्येकेन रूपेण ।३।७३।

पाँचों वृत्तियों, अविद्या और अहंकार इन सात से प्रकृति आत्मा को बन्धन में डाले है। जैसे मकड़ी अपने को अपने बनाये जालों से घेर लेती है। अकेली अखंड विवेक ख्याति जीव को मुक्त कर देती है।

निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानि ।३।७४।

अविवेक ही बन्धन का कारण है। यह निश्चय जानना। दृष्टसंसार से वैराग्य ही करना है। उसकी हानि नहीं होती। वह सदातन है।

तत्त्वाभ्यासान्नेति नेति त्यागाद्विवेकसिद्धिः ।३।७५।

तत्त्व के अभ्यास से, पुरुष प्रकृति के भेद ज्ञान के अभ्यास से विवेक सिद्ध होता है। यह संसार सुखकर नहीं है। आत्मा आनन्दमय नहीं है। ऐसा अभ्यास करे।

अधिकारिप्रभेदान्न नियम ।३।७६।

साधना के भिन्न-भिन्न कोटि के अधिकारी होते हैं। सबके लिए एक ही नियम नहीं बनाया जा सकता है। किसी को तप, किसी को जप,

किसी की ईश्वर-प्रणिधान आदि की भिन्न-भिन्न साधना की स्थितियाँ हैं।

जीवन्मुक्तश्च ।३।७८।

विवेकी जीवन्मुक्त होता है।

उपदेश्योपदेष्टृत्वात्तत्सिद्धिः ।३।७९।

योग्य जीवन्मुक्त उपदेष्टा और योग्य शिष्य मिलने से विवेक सिद्ध हो जाता है।

इतरथान्धपरम्परा ।३।८१।

सिद्ध जीव-मुक्त उपदेष्टा न हो तो अन्ध परम्परा चल पड़ती है। जीवन्मुक्त भोगी नहीं होता। भोग में आनन्द कहाँ! पूर्ण विरक्त सदा समाधिस्थ रहता है।

चक्र-भ्रमणवद्धृतशरीरः ।।३.८२।।

जीवन्मुक्त की जीवन-यात्रा स्वतः चलती है, जैसे चाक वेग से ही विना घुमाये घूमता है।

विवेकान्निःशेष दुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यो नेतरान्नेतरात् ।।३।८४।।

विवेक से सकल दुःखों की निवृत्ति हो जाने पर योगी कृतकृत्य हो जाता है और किसी उपाय से नहीं।

बहुभियोगे विरोधोरागादिभिः कुमारी शंखवत् ।४।९।

बहुतों के साथ विवेक नहीं होता। रागादि से विरोध हो जाता है। कुमारी अनेक शंख पहन ले तो टूटेंगे ही। एक हो तो बना रहेगा।

द्वाभ्यामपि तथैव ४।१०।

दो हों तब भी यही होता है।

निराशः सुखी पिंगलावत् ।४।११।

सब की आशा छोड़ देने पर मनुष्य सुखी होता है। भगवान् उसको संभाल लेते हैं। जैसे पिंगला भगवान् भरोसे सुखी हो गई।

अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत् ।४।१२।

कुटि आश्रम आदि के निर्माण में न पड़े। बने बनाये पर घर में या

गुफा आदि में निर्द्वन्द्व रहे। जैसे साँप कभी अपना बिल नहीं बनाता, बने-बनाये में घुस जाता है।

बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि सारादा नंषट्पदवत् ।४।१३।

बहुत शास्त्रों के अध्ययन के लिये बहुत गुरुओं की उपासना करने पर भी शास्त्र का सार ग्रहण करे, व्यर्थ की व्याख्या तथा अन्य बातों में न पड़े। भौंरा जैसे फूलों से सार ग्रहण कर लेता है।

इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः ।४।१४।

व्युत्थान स्थिति—लोक व्यवहार में भी निपुण इषुकार के समान समाहित रहे। भगवान् को ध्यान में रखे तो समाधि की हानि नहीं होती। व्यवहार में फँसे नहीं, जैसे इषुकार कोई भी दृश्य आये, वह अपने इषु घड़ने में लगा रहता है।

व्रत नियम लङ्घनादानार्थक्यं लोकवत् ।४।१५।

तप और यमादि के नियमों के उल्लंघन से सब साधना व्यर्थ हो जाती है। संसारी जैसे स्वास्थ्यादि का नियम उल्लंघन करने पर रुग्ण हो जाता है।

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ।४१६।

ओं विस्मरण से भी अनर्थ हो जाता है,मेंडकी की तरह। मेंडकी को पानी में रहना होता है। स्थल पर कूद आवे तो दबकर मर ही जाती है। ओं को कभी न भुलाये।

नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते ।४।१७।

योगविधि के पढ़ लेने से भी साधक कृतकृत्य नहीं हो सकता। उसे मनन और अभ्यास करना ही होगा।

प्रणति ब्रह्मचर्योपसर्पणादि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात् तद्वत् ।४।१९।

योगगुरु को प्रणाम, ब्रह्मचर्य का पालन, गुरु के सान्निध्य में रहने से सिद्धि होती है, दीर्घकाल में, जल्दबाजी में नहीं। इन्द्र को बहुत काल में स्वर्गराज्य की सिद्धि हुई थी।

न कालनियमो वामदेववत् ।४।२०।

समय का कोई नियम नहीं। देर लगती है। शीघ्र भी संस्कारों से

सिद्धि हो सकती है, जैसे वामदेव को शीघ्र सिद्धि हो गई और वह ऋषि तक हो गया।

अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव ।४।२१।

सत्-चित्-आनन्द की अध्यास रूप से उपासना—योगाभ्यास करने से परम्परा से यथासमय जप-धारणा-ध्यान, समाधि की सिद्धि हो जाती है। यज्ञ-याग की उपासना करने वालों को यज्ञ-फल जैसे मिलता है, पर यज्ञ से योग-सिद्धि नहीं होती।

इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पंचाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ।४।२२।

यज्ञ से लाभ होता है पर पुनः पुनः जन्म होता है। आवागमन नहीं छूटता। पंचमहायज्ञ करते-करते भी जन्म का श्रुति विधान है। पंचमहा-यज्ञों से भी मोक्ष नहीं।

विरक्तस्य हेय हानम् उपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् ।४।२३।

पूर्ण विरक्त के हेय दुःख का हान हो जाता है। उपादेय पुरुष की प्राप्ति हो जाती है। हंस भी हेय जल को पृथक् कर दूध को ले लेता है। यही परमहंस का कार्य है।

लब्धातिशययोगात् तद्वत् ।४।२४।

अत्यन्त उच्चकोटि के योगाभ्यास से यह स्थिति आती है। हंस के समान।

न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ।४।२५।

संसार के रागी के दुःख के हान में और भगवान् के उपादान में कामचारिता-स्वतन्त्रता नहीं हो सकती, जैसे पंजरे में बँधे तोते की उड़ान अपने आधीन नहीं है।

गुणयोगात् बद्धः शुकवत् ।४।२६।

सत्त्व, रज और तमो गुणों में रागी बँधा रहता है, जैसे तोता पिंजरे । में

न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत् ।४।२७।

भोगों के भोगने से भोगों से प्रेम समाप्त नहीं होता। जैसे सौमी मुनि का इतिहास प्रसिद्ध है।

दोषदर्शनादुभयोः ।४।२८।

भोक्ता के बन्धन और भोगों के दोषों के विचारते रहने से ही

वैराग्य होता है। संसार का राग समाप्त हो जाता है।

न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ।४।२९।

मलिन चित्त में योगोपासना का बीज अंकुरित नहीं होता जैसे बकरे के पेट में अनेक अन्न जाते हैं, वहाँ मल-खाद भी है पर पेट में बीज फूटता नहीं। अंकुरित नहीं होता।

नाभासमात्रमपि मलिन-दर्पणवत् ।४।३०।

मैले चित्त में तो भगवान् का आभास तक भी नहीं होता, जैसे मैले शीशे में कुछ भी नहीं दीखता।

न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धिवत् उपास्यसिद्धिवत् ।४।३२।

विभूतियों के सिद्ध हो जाने पर भी योगी कृतकृत्य नहीं होता। जैसा कि उपास्य भगवान् की सिद्धि होने पर योगी कृतकृत्य होता है।

नाणिमादियोगोऽप्यवश्यम्भावित्वात्तदुच्छितेरितरयोगवत्

।५।८२।

अणिमा आदि आठों सिद्धियों का मिल जाना भी योग नहीं है, उन सिद्धियों का भी अवश्य नाश हो जाता है, समाप्ति हो जाती है जैसे दूसरे मिलने वाले पदार्थों का भी वियोग हो जाता है।

योगसिद्धयोऽप्यौषधादि सिद्धिवन्नापलपनीयाः ।५।१२।

योग सिद्धियाँ खण्डन अपलाप करना नहीं चाहिये। औषधि जैसे रोग नाश में सिद्ध है ऐसे ही योगजसिद्धियाँ भी सिद्ध हैं।

समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता ।५।११।

समाधि, सुषुप्ति और मोक्ष में ब्रह्मानन्द की अनुभूति होने से ब्रह्म रूपता-सी होती है।

नैकस्यानन्द चिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात् ।५।६६।

दोनों आनन्द चेतन रूप नहीं हैं। एक ही आनन्द चित् है। वह परमात्मा है। दोनों का यह भेद है।

न षट् पदार्थ नियमः तद्बोधान्मुक्तिः ।५।८५।

प्रकृति के छः पदार्थों के जानने का नियम अनिवार्य नहीं। ब्रह्मबोध से ही मुक्ति होती है।

देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात् ।६।२।

आत्मा देह आदि से भिन्न है क्योंकि इनसे विलक्षण है।

अत्यन्त दुःख निवृत्या कृतकृत्यता ।६।५।

दुःख का अत्यन्ताभाव ही आत्मा की कृतकृत्यता है।

कुत्रापि कोऽपि सुखी न ।६।७।

कहीं भी किसी स्थिति में भी कोई सुखी नहीं है। सब दुःखी ही हैं।

परधर्मत्वेऽपि तत्सिद्धिरविवेकात् ।६।११।

दुःख आदि प्रकृति के धर्म हैं। अविवेक से जीवात्मा अपने समझ लेता है।

प्रकारान्तराभावादविवेक एव बन्धः ।६।१६।

अविवेक ही बन्धन का हेतु है। बन्धन में अन्य हेतु का अभाव है।

मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न परा ।६।२०।

अविवेक का नाश हो जाने से ही मुक्ति है,अन्य कुछ नहीं।

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ।६।२१।

मन्द, मध्य, उत्तम, अधिकारियों के भेद हैं। अतः सब के लिए एक ही कोटि की साधना का नियम नहीं है।

स्थिरसुखमासनमिति न नियमः ।६।२४।

अचल और सुख देने वाला हो यही बैठने के आसन का नियम है। अन्य आसनों का नियम नहीं है। आसन तो शतशः हो सकते हैं।

ध्यानं निर्विषयं मनः ।६।२५।

मनका विषयों की वृत्ति से रहित होना ध्यान है वैराग्य से विषयोपरत होने पर ही ध्यान होता है।

ध्यान धारणाभ्यास वैराग्यादिभिस्तन्निरोधः ।६।२६।

धारणा, ध्यान, समाधि,और वैराग्य से चित्त की वृत्तियाँ रुकती हैं।

न स्थाननियमः चित्तप्रासादात् ।६।३१।

स्थान का नियम प्रधान नहीं। चित्त की प्रसन्नता ही नियम है। चित्त को सदा प्रसन्न रखे।

अहंकारः कर्त्ता न पुरुषः ।६।५४।

अहंकार ही कर्त्ता है, पुरुष नहीं।

कर्मनिमित्तः प्रकृतेः स्वस्वामिभावोऽप्यनादिबीजांकुरवत् ।६।६७।

प्रकृति के साथ स्व स्वामिभाव का सम्बन्ध अनादि है, बीजांकुर की तरह।

अविवेकनिमित्तको वा पञ्चशिखः ।६।६८।

प्रकृति को 'स्व' अपने को स्वामी समझना अविवेक के कारण है। ऐसा पंचशिखाचार्य ने माना है।

यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः ।६।७०।

स्व स्वामी सम्बन्ध किसी प्रकार भी हुआ हो, उसका नाश, प्रकृति से परवैराग्य ही पुरुष के जीवन का प्रयोजन है। प्रकृति से परवैराग्य ही पुरुषार्थ है।

न्याय दर्शन में योग साधना

न्याय दर्शन में योग प्रक्रिया पूरी दी है। प्रमाण-प्रमेय आदि के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस-मोक्ष होता है। यह न्याय के आरम्भ के सूत्रों में कहा है सांख्य की नाई तर्क उपस्थित किया नअन्त में४-२-३८ में वात्स्याय ने अवतरणिका उठाई है :—

कथम् तत्त्वज्ञान मुत्पद्यते—तत्व ज्ञान का साधन क्या है ? तत्त्वज्ञान कैसे उत्पन्न होता है ? सूत्रकार गौतम ने उत्तर दिया है।

समाधि विशेषाभ्यासात् ।४।२।३८।

समाधि विशेष अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधियों के अभ्यास से ही तत्त्व-ज्ञान होता है।

वात्स्यायन ने भाष्य किया—"स तु प्रत्याहृतस्येन्द्रियेभ्यो मनसोधारकेण प्रयत्नेन धार्यमानस्यात्मना संयोगस्तत्त्वबुभुत्साविशिष्टः, सति हि तस्मिन्निन्द्रियार्थेषु बुद्धयो नोत्पद्यन्ते, तदभ्यासवशात् तत्त्वबुद्धिरुत्पद्यते। यदुक्सतंति हि तस्मिन् इन्द्रियार्थेषु बुद्धयो नोत्पद्यन्ते इत्येतत्।

—इन्द्रियों से मन को हटाकर, धारणा से आत्मा के साथ मन का संयोग हो जाता है। उस समय आत्मा तत्त्व को जानने की भावना से विशिष्ट रहता है, ऐसी समाधि की स्थिति में इन्द्रियों से ज्ञान नहीं होता है। उस सम्प्रज्ञात के अभ्यास से तत्त्वों का साक्षात्कार होता है। इसीलिए

कहा है कि सम्प्रज्ञात में ही तत्त्वबोध होता है। इन्द्रियों से विशुद्ध ज्ञान नहीं होता है।

नार्थ-विशेष-प्राबल्यात् ।४।२।३९।

अर्थों,पदार्थों में, विषयों में विशेष प्रबलता होने से सम्प्रज्ञात समाधि नहीं लगता।

भाष्यम्—विशेषप्राबल्यात् समाधिविशेषो नो त्पद्यते।

क्षुदादिभिः प्रवर्त्तनाच्च ।४।२।४०।

क्षुत्पिपासाभ्यां व्याधिभिश्च समाधिविशेषो नोत्पद्यते—वात्स्यायन भूख-प्यास, और रोगों से सम्प्रज्ञात समाधि नहीं लगा करती। अतः भूख-प्यास पर विजय प्राप्त करना होगा, तब रोग भी न होंगे- न बाधा ही होगी। यह अभिप्राय है।

पूर्वकृतफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः ।४।२।४१।

भाष्यम्—पूर्वकृतो जन्मान्तरोपचित्तितस्तत्त्वज्ञानहेतुधर्म प्रविवेकः फलानुबन्धो योगाभ्यास-सामर्थ्यम्—पूर्व-दीर्घकाल तक किया योग अभ्यास तथा जन्म-जन्मान्तर में किया योगाभ्यास तत्त्वज्ञान का हेतु होता है, तब पूर्ण योगसामर्थ्य प्राप्त होता है।।

अरण्य गुहा पुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः। ४।२।४२।

वन,गुफा,नदी तीर आदि में योगाभ्यास करने का उपदेश है वात्स्यायन लिखते हैं:—योगाभ्यासजनितो धर्मो जन्मान्तरेऽप्य नुवर्त्तते। प्रचय- कागते तत्त्वज्ञान हेतौ धर्मे, प्रकृष्टतायां समाधि-भावनायां तत्त्वज्ञानमुत्पद्यते दृष्टश्च समाधिना अर्थ-विशेष- प्राब याभिभवः।

—योगाभ्यास के संस्कार जन्मान्तर में अनुवर्त्तित होते हैं। तत्त्व-ज्ञान के कारण योग संस्कार के भली प्रकार संगृहीत हो जाने पर, समाधि भावना के प्रबल हो जाने पर तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है। देखा गया है—समाधि से विशेष पदार्थों के विषयों की प्रबलता दब जाती है।

तदर्थं यम-नियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्म विध्युपायैः ।४।४६।

तस्यापवर्गस्याधिगमार्थयम नियमाभ्यामात्म संस्कारः यमः समानमाश्रमिणां धर्म-साधन नियमस्तु विशिष्टम्। पुनरधर्म हानम्, धर्मोपचयश्च योगशास्त्राध्यात्मविधिःप्रतिपत्तव्यः। सः पुनस्तपः, प्राणायामः, प्रत्याहारो

धारणा ध्यानमिति । इन्द्रिय विषयेषु प्रसंख्यानाभ्यासो, रागद्वेष प्रहाणार्थ उपायस्तु योगाचार विधानम् इति—उस मोक्ष की प्राप्ति के लिए यम नियम के परिपालन से आत्मा का संस्कार होता है । पांचों यमों, पांचों नियमों का पालन सब आश्रम वालों के लिये समान धर्म है । यम सब ही ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्न्यासी को पालने चाहियें । नियम तो विशेष हैं । ब्रह्मचर्य गृहस्थ में साधारण वानप्रस्थ में पूरी तरह पालन करना होता है । आत्म संस्कार का निमित्त अधर्म को सर्वथा छोड़ना है । अहिंसा आदि धर्मों का पूर्णतया पालन करना है । योगशास्त्र से आत्मज्ञान की विधि जाननी चाहिए । वह है—तप, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा-ध्यान का सम्यक् अभ्यास, इन्द्रियों के विषयों का पूर्ण विवेक से परित्याग करने का अभ्यास और रागद्वेष के नाश का उपाय तो योग के आचार के विधान का परिपालन है ।

ज्ञान ग्रहणाभ्यासस्तद्विद्यैश्च सह संवादः ।।४७।।

ज्ञायतेऽनेनेतिज्ञानमात्मविद्याशास्त्रं तस्य ग्रहणम्अध्ययन धारणे, अभ्यासः सतत क्रियाध्ययन श्रवण चिन्तनानि, तद्विद्यैश्च सह संवाद.इति प्रज्ञापरिपक्वार्थः । परिपाकस्तु संशयछेदनम् अविज्ञातार्थ बोधोऽध्यवसिता-भ्यनुज्ञानमिति समायवादः सम्वादः । तद्विद्यैश्च सह संवाद इत्यविभक्तार्थ वचनं विभज्यते ।

—जिससे जानें वह ज्ञान है । अर्थात् आत्मविद्या का शास्त्र,योगशास्त्र, उसका ग्रहण करना अर्थात् पढ़ना और आचरण में लाना अभ्यास है लगा-तार योग की क्रिया करना, योगशास्त्र का पढ़ना, सुनना, और चिन्तन करना । उस योगशास्त्र के जानने वालों के साथ वाद करना । इन बातों से योग की धारणा या योग प्रज्ञा परिपक्व होती है । परिपाक होता है उस समय जब संशयों का उच्छेद हो जाये । न जाना हुआ सब जान लिया जाये । जिसके ज्ञान का निश्चय किया था उसका ज्ञान हो जाये । किसी अनुभवी से मिल कर जानना सम्वाद है । योग विद्या को जानने वालों के साथ सम्वाद करना । इस प्रकार अविभक्त करके कहे 'सम्वाद' को विभक्त करके समझ लेना चाहिए ।

तं शिष्य-गुरु-सब्रह्मचारि-विशिष्ट-श्रेयोऽर्थिभिरभ्युपेयात् ।४८।

उस सम्वाद का शिष्य, गुरु, सहाध्यायी-सतीर्थ्य, विशेष कल्याण-मोक्ष के साधकों के पास बैठ कर करे ।

प्रतिपक्षहीनमपि वा प्रयोजनार्थमर्थित्वे ।४६।

परतः प्रज्ञामुपादित्समानस्तत्त्वबुभुत्सा प्रकाशनेन स्वपक्षमनवस्थापयन् स्वदर्शनं शोधयेत् । अन्योऽन्य प्रत्यनीकानि च प्रवादुकानां दर्शनानि स्वपक्षरागेण चैके न्यायमतिवर्तन्ते तत्र ।

—दूसरे से प्रज्ञा प्राप्त करने का इच्छुक तत्त्व के जानने की इच्छा प्रकट करे । अपने पक्ष की स्थापना न करे । अपने ज्ञान को शुद्ध करले । विवाद करने वालों के ज्ञान एक दूसरे से विपरीत हुआ ही करते हैं । अपने पक्ष के मोह में बहुत से न्याय को छोड़ देते है ।

वीतरागजन्मादर्शनात् ।३।१।२५।

पूर्ण विरक्ति परवैराग्य प्राप्त कर जन्म नहीं होता । उसकी मुक्ति हो जाती है ।

दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः ।४।२।२।

कल्पना से सृजन किए हुए रूपादि पाँचों विषय मन के संकल्प उत्पन्न हुए हैं । इनका अपना स्वरूप तो दोष निमित्तक नहीं । मोह के कारण, अज्ञानवशात् पांचों विषयों में अनुरक्ति होती है । विषयों का भी एक रूप नहीं । किसी को लाल ही अच्छा लगता है, किसी को नीला, किसी को पीला, क्यों ? यदि लाल ही मोहक है तो सब को मोहित करे । एक को ही क्यों करता है । ऐसे ही अन्य रंग हैं । किसी विशेष रंग में ही आकर्षण होता तो सब को ही वह रंग आकृष्ट करता । बस जिसने जिसका संकल्प कर लिया, उसे वही आकृष्ट करता है । यही स्वाद, गन्ध, शब्द, स्पर्श आदि की फँसावट में मन का व्यामोह ही कारण है ।

दोषनिमित्तानां तत्त्वज्ञानादहंकार निवृत्तिः ।४।२।१।

वात्स्यायन भाष्यम—मिथ्याज्ञानं वै खलु मोहः । न खलु तत्त्वज्ञानस्यानुत्पत्तिमात्रम् । तच्च मिथ्याज्ञानं यत्र विषये प्रवर्त्तमानं संसारबीजं भवति ।

स विषयः तत्त्वतोज्ञेय इति । किं पुनस्तत् मिथ्याज्ञानम् । अनात्मनि आत्मग्रहः अहमस्मि इति मोहोहंकारः इति । अनात्मानं खल्वहमस्मीति पश्यतो दृष्टिरहंकार इति किं पुनस्तदर्थजातं यद्विषयोऽहंकारः संसार-बीजं भवति । अयं खलु शरीराद्यर्थजातमहमस्मीति व्यवसितः तदुच्छेदनादुच्छेदनमात्मनो मन्यमानोऽनुच्छेद तृष्णापरिप्लुतः पुनः पुनस्तदुपादत्ते, तदुपाददानो

जन्ममरणाय यतते । तेनावियोगन्नात्यन्तं दुःखाद्विमुच्यते इति । यस्तु दुखं, दुःखायतनं, दुःखानुषक्तं सुखंच 'सर्वम् इदं दुःखमिति पश्यति स दुःखं परिजानाति । परिज्ञातं च दुःखं प्रहीणं भवति, अनुपादानात् सविषान्नवत् । एवं दोषान्, कर्म च दुःख-हेतुरिति पश्यति । न चाप्रहीणेषु दोषेषु दुःख प्रबन्धोच्छेदेन शक्यं भवितुमिति दोषान् जहाति प्रहीणेषु च दोषेषुन प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानायेत्युक्तम् ।

प्रेत्यभावः, फल-दुःखानि च ज्ञेयानि, व्यवस्थापयति दोषांश्च प्रहेयान् । अपवर्गोऽधिगन्तव्यः, तस्याधिगमोपायस्तत्वज्ञानम् । एवं चतसृभिर्विद्याभिः प्रमेयं विभक्तमासेवमानस्याभ्यस्यतो भावयतः सम्यग् दर्शनं यथाभूतावबोधस्तत्व ज्ञानमुत्पद्यते इति ।।

—मिथ्या ज्ञान ही मोह है । तत्वज्ञान का केवल उत्पन्न न होना ही मिथ्या ज्ञान नहीं है । वह मिथ्या ज्ञान जिन-जिन विषयों में होने पर संसार का संसार के मरण जन्म का चक्र बनता है वह मिथ्या ज्ञान है, उन विषयों को, प्रकृति पुरुष के स्वरूप से तात्विक रूप में साक्षात् करना चाहिए। केवल सुन सुनाकर नहीं ।

वह तत्व ज्ञान क्या है ?

"अनात्म पदार्थों को आत्मा समझ लेना । प्रकृति और प्रकृति से बने रुपया, पैसा, सोना, चांदी, मकान, भूमि, अपनी देह, पर देह आदि को आत्मा समझ लेना । उनके अभाव में आत्मा का सन्तप्त होना मिथ्या ज्ञान है । आत्मज्ञानी सन्तप्त नहीं होता ।

'यह सब मैं हूं, या यह मेरा है यही अहंकार है, यह अहंकार ही अविद्या की जड़ है । 'आत्मा से भिन्न—अनात्मपदार्थों को 'मैं—आपा-आत्मा' समझना—इस प्रकार जानने वाले का दर्शन-ज्ञान ही अहंकार हैं ।

— वह कौन कौन से पदार्थ हैं जिनमें आत्मभाव होने से अहंकार होता है और वह संसार का जन्म-मरण का कारण-बीज बना रहता है ?

"शरीर, मन,वेदना, बुद्धियों को आत्मा-आपा समझ लेना अहंकार है, जन्म-मरण के चक्र में फँसना है ।"

इनमें आत्मबुद्धि अहंकार कैसे संसार का—आत्मा के जन्ममरण में संसरण का हेतु बनता है?

"यह चेतन आत्मा शरीर आदि पदार्थों को ही आत्मा निश्चय किये है । इन पदार्थों के नाश को अपना—आत्मा का नाश मान बैठता है । इस

लिए इन पदार्थों का नाश न हो इस तृष्णा से लालसा से आप्लावित है, भरा पड़ा है। घिरा पड़ा है। इसलिये बार बार उनका संग्रह करता है। उनको संग्रह करता हुआ जन्म-मरण संसरण के लिए ही यत्न करता है। उन पदार्थों के साथ वियोग न होने से, संयोग के बने रहने से कभी भी दुःख से अत्यन्त सार्वकालिक छुटकारा नहीं होता है।"

जो दुःख को, दुःख के आयतन—दुःख के ही कारण, दुःख से मिश्रित सुख को भी 'सब कुछ दुःखमय है, दुःख रूप है, ऐसा जानता है, समझ लेता है वह ही दुःख के स्वरूप को पहचान गया है। दुःख का स्वरूप जान लेने पर छूट जाता है, छोड़ दिया जाता है जैसे विषाक्त अन्न को छोड़ देते हैं। इस प्रकार अविद्या आदि दोषों को और कर्मों को भी दुःख का हेतु ही जानता है, मानता है। अविद्यादि क्लेश दोषों के छूटे बिना दुःख की परम्परा नष्ट नहीं होती,नहीं हो सकती। अन्य केवल तर्क ज्ञान इसका साधन नहीं है। इसलिए मोक्ष का इच्छुक अविद्यादि दोषों को छोड़ देता है। छूटे हुए अविद्या आदि में फिर प्रवृत्ति नहीं करता नहीं तो फिर उसी प्रकार फँसावट हो जायेगी।

जानने योग्य मृत्यु, मृत्यु के फल और दुःखों को, कर्मों को और हेय दुःखों को छोड़ने की व्यवस्था करता है।

मुक्ति—अपवर्ग—मोक्ष प्राप्त करना चाहिए। मानव-जीवन का लक्ष्य यही है। मुक्ति पाने का उपाय तत्त्व ज्ञान है। इस प्रकार अविद्या आदि चारों के अभाव से जन्य विद्या, आत्म ज्ञान, सुख से विमुखता और दुःखानुभव शून्यता प्रमेय प्रकृति पुरुष को पृथक्-पृथक् भाव से अनुभव करते हुए विवेक-सम्पन्न योगाभ्यासी को सम्यग्दर्शन—सही सही विशुद्ध ज्ञान होता है, उसको सब भूतों का यथातथ्य ज्ञान उत्पन्न होता है।"

प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भः इति ।१।१।१७।

वाणी, बुद्धि, शरीर से जिनका आरम्भ होता है वह सब प्रवृत्ति है। इन्हें ही योग में पांच प्रवृत्तियाँ कहा है।

प्रवर्त्तनालक्षणो दोषः । १।१।१८ ।

जिनसे प्रवृत्ति होती है, जिनसे वाणी, बुद्धि, और शरीर कार्य करते हैं वे ही वृत्तियाँ दोष कहाती हैं।

प्रवृत्ति दोष जनितोऽर्थः फलम् । १।१।२० ।

प्रवृत्ति-दोष से उत्पन्न परिणाम ही प्रवृत्ति का फल तथ्यरूप से दुःख ही है।

बाधना लक्षणं दुःखम् । १।१।२१ ।

प्रवृत्ति और प्रवृत्ति फल मोक्ष में सुख में बाधक है इसलिए दुःख है ।

तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः । १।१।२२ ।

उस प्रवृत्ति, प्रवृत्ति का फल अत्यन्त छूट जाना मोक्ष है । मुक्ति है, इस मोक्ष की ही साधना पूर्ववर्णित न्याय ने बतायी है ।

वेदान्त दर्शन में योग साधना

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् । ४।१।१ ।

ओं नाम की आवृत्ति करनी चाहिए । पुनः पुनः उच्चारण वाचिक, फिर मानसिक करना चाहिए । अन्त में बौद्धिक । वेद, उपनिषद्, आदि में स्मृतियों में शतशः बार यही बताया गया है ।

(देखो हमारी लिखी 'ओं मन्त्रोपासना')

लिंगाच्च । ४।२।२ ।

सत् चित् आनन्द लिंगों से, गुणों की भावना से स्मरण करे । यही साधना अर्थ-भावना तक-परमेश्वर पदार्थ तक पहुँचा देगी ।। आदित्यवर्णम्, तेजोऽसि,भर्गः सर्वत्र भास्वर स्वरूप का उल्लेख है ।। 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्, आदि । "यत्रआनन्दाश्च मोदाश्च" अथर्व वेद में कहा है आनन्दमय में ध्यानमग्न होने से आनन्द ही आनन्द रहता है । मोद ही मोद रहता है । 'सर्वज्ञानमयो हि सः वह ज्ञान स्वरूप चेतन तत्त्व है ।

आत्मेत्युपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च । ३।१।३ ।

ध्यान में आत्मा और परमात्मा का अवलम्बन कर उन्हें प्राप्त हो जाते हैं ।

आत्मनात्मानमभिसंविवेश ।। यजुर्वेद । ३१।११ ।

'संविश्यात्मनात्मानम्' ।। माण्डूक्य ।०।१२ ।

आत्मा से परमात्मा में प्रवेश करके ध्यान करे ।

न प्रतीके न हि सः । ४।१।४ ।

प्रतीकोपासना से योग-साधना नहीं होती है ।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् । ४।१।५ ।

साधना में उत्कर्ष का हेतु ब्रह्मदृष्टि है । ब्रह्मरूप अर्थावगति बनी रहे ।

आदित्यादिमतयश्चांग उपपत्तेः । ४।१।६ ।

आदित्यादि प्रकाश, आदित्य, चन्द्रतारा, आदि का साधना में दर्शन उपपन्न है । योगाग्रगति का चिन्ह है ।

उद्गीथ आदित्यः । छान्दो० २।२।१ ।

आसीनः सम्भवात् । ४।१।७ ।

आसनासीन ध्यान करे,ब्रह्मोपासना आसन से ही सम्भव है । शयान को आलस्य नीन्द घेर लेती है । खडा श्रान्त हो जाता है । चलता हुआ चंचल होता है ।

ध्यानाच्च । ४।१।८ ।

ब्रह्म ज्ञान भी ध्यान से ही सम्भव है ।

अचलत्वं चापेक्ष्य ।४।१।९ ।

अचल रहने से ही ध्यान निष्पन्न होता है । हिलने-डुलने से मन डुल जाता है । मन हिलता है तो ही तो शरीर हिलता है ।

स्मरन्तिच । ४।१।१० ।

योगाभ्यासी नाम स्मरण करते हैं । 'ओं क्रतो स्मर यजुः ४० अ० योग क्रिया का अभ्यासी 'ओं' का स्मरण करता है । 'ओकारं ध्यायन्ति योगिनः" ओं का जप करते करते योगी ध्यान पर पहुँचते हैं । शिखोपनिषद् । 'प्रणवो धनुः' । योग साधना का प्रणव ही धनुष है । आदि ।

यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् । ४।१।११ ।

जहाँ एकाग्रता हो वहीं रहे । पर्वत, नदी कूल, आदि का कोई प्रतिबन्ध नहीं है ।

आ प्रायणात् तत्रापि दृष्टम् ।। 'ओं स्मरण'मरण पर्यन्त है यावज्जीवन है । "प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत" प्रश्नो० ५।१।। यावदायुषं ब्रह्म लोकमभिसम्पद्यते ।। छान्दो० ८-१५-१।। आयुपर्यन्त ब्रह्म नाम ओम का स्मरण कर उस ब्रह्म लोक को प्राप्त हो ।

तदधिगम उत्तरपूर्वाधयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्

। ४।१।१३ ।

ध्यान साधना से—योगापासना से उस ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

और साथ ही भूत और भविष्यत् के पापों का भोग नहीं मिलता है। वे पाप नष्ट ही हो जाते हैं। ऐसा ही शास्त्रों में व्यपदेश है—

"यथा पुष्कर पलाशे आपो न श्लिष्यन्ति एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते" छान्दो० ४।१४।३।

ढाक के पत्ते पर पानी नहीं लगता, ऐसे ही ब्रह्मज्ञानी योगी को पाप और कर्म नहीं छूते॥

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते" छान्दो० ५।२४।३।

जैसी सींक की लिपटी रुई अग्नि में भस्म हो जाती है ऐसे इसध्यानी के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

इतरस्यापि एवमश्लेषः पाते तु। ४.१.१४।

योगी के दूसरे प्रारब्ध पुण्य कर्मों का भी अश्लेष और पूर्व संचित पुण्यों का नाश हो जाता है। देहपात होने पर। ऐसा ही कहा भी है।

"क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टे परावरे"।मुण्डक २।२।८।

भगवान् के दर्शन पर इस योग-साधक के कर्म नष्ट हो जाते हैं।

न वै सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति। अशरीरं वावसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः। छान्दोग्य ८.१२.१।

शरीर के रहते तक पाप पुण्य रहते हैं, पर विरक्त ध्यानी के शरीर अध्यास न रहने पर पाप पुण्य का नाश हो जाता है।

अनारब्ध कार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः।४.१.१५।

संचित कर्म ही जिन्होंने फल प्रदान आरम्भ नहीं किया वे पाप पुण्य नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्म-प्राप्ति ही पुण्य पाप नाशक की सीमा है।

"तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये"—छान्दोग्य०

।६.१४.२।

उसको उतनी ही देर है जब तक मुक्त नहीं होता। मुक्ति के साथ ही पाप पुण्य नष्ट हो जाते हैं।

अग्निहोत्रादितु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् । ४.१.१६ ।

अग्निहोत्रादि ब्रह्मप्राप्ति के लिए ही गृहस्थादि आश्रमों में विहित हैं। उनका कार्य परोपकार कर्म के कारण सत्व गुण की अभिव्यक्ति ही है। पुण्य भी नाश हो जाता है—

यदा पश्यः पश्यतेरुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्म योनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ।।—जब

साक्षात्कृत योगी हिरण्यरूप कर्ता ईश्वर पर ब्रह्म वेदाविष्कर्ता को देखता है। उस समय वह ब्रह्मज्ञानी पुण्य पाप को नाश करके निष्कलंक हो जाता है, अपरामृष्ट परब्रह्म की समता प्राप्त करता है चाहे परब्रह्म में परिणत नहीं होता।

यदेव विद्ययेति हि । ४.१.१४ ।

अविद्यादिपंचक को हान करके विवेक से ब्रह्म साक्षात् करता है।
—यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति । छान्दो० । १.१.१० ।

विवेक, श्रद्धा और ब्रह्मोपनिवेशन से जो ब्रह्मज्ञान होता है, वही श्रेष्ठतम है।

योगिनः प्रति स्मर्यते स्मार्ते चैते । ४.३.२१ ।

योगी के जानने योग्य दक्षिणायन उत्तरायण हैं। ये दो भाग स्मृति में आये हैं।

दर्शनाच्च । ४.३.१३ ।

देवयान मार्ग भी ब्रह्म दर्शन कराता है।
यह थोड़ा सा वेदान्त दर्शन का योग विषय दर्शाया।

वैशेयोग दर्शन में योग

तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि, शरीरस्य दुःखाभावः संयोगः । ५.२.१६ ।

मन के अपने आप में ही ठहर जाने पर, सर्ववृत्तियों का निरोध हो जाने पर, उसकी वृत्तियों का अनारम्भ होने पर, शरीर के दुःखों का अभाव हो जाता है। क्लेश और कर्म की निवृत्ति हो जाती है। वही योग है।

तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः । ५.२.१८ ।

वृत्तियों कर्मों, क्लेशों का संयोग न होने पर जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है यही मोक्ष है ।

आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम् ॥ ६.१.११ ॥

आत्मा और मन के संयम-प्रक्रिया के द्वारा आत्मा में संयोगविशेष होने से आत्मा का प्रत्यक्ष होता है ।

तथा द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षाम् ।६.२.१२ ।

उसी प्रकार आत्मा और मन के संयम के प्रयोग के द्वारा संयोग विशेष के होने पर अन्य प्रकृति स्थूल, सूक्ष्म पदार्थों का योगज प्रत्यक्ष होता है ।

असमाहितान्तः करणा उपसंहृतसमाधयस्तेषां च । ६.१.१३ ।

एकाग्रवृत्ति वालों को भी समाहित हो जाने पर और सम्प्रज्ञात समाधियों के उपसंहार में सब प्रत्यक्ष हो जाता है ।

तत्समवायादात्मकर्मगुणेषु । ६.१.१४ ।

उन सूक्ष्म द्रव्यों के समवाय सम्बन्ध से रहने वाले गुणों और कर्मों का भी प्रत्यक्ष होता है ।

आत्मसमवायादात्मगुणेषु । ६.१.१६ ।

आत्मा में समवाय-नित्य सम्बन्ध से रहने वाले गुणों कर्मों का भी योगज प्रत्यक्ष होता है ।

आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच स्मृति । ६ ।

आत्मा मन के संयोग विशेष से और संस्कारों से स्मृति होती है ।

स्वप्नान्तिकम् । ८ ।

स्वप्न में दृष्ट का भी आत्म मन के संयोग विशेष से ज्ञान और स्मृति होती है ।

धर्माच्च । ६ ।

द्रव्यों के उपयुक्त धर्मों गुणों से भी स्वप्न होते हैं ।

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या । १० ।

इन्द्रियों के दूषित ज्ञान से और दूषित संस्कारों से अविद्या होती है।

तद्दुष्टज्ञानम् । ११ ।

वह इन्द्रिय-जन्य ज्ञान दुष्ट है ।

अदुष्टं विद्या । १२ ।

दोषों-क्लेशों से रहित ज्ञान ही विद्या है । विवेक है ।

आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः । १३ ।

ऋषियों और सिद्धों के दर्शन योगज धर्म से होते हैं । इति

यह दर्शनों की योग प्रक्रिया है । योग दर्शन तो है ही योग प्रक्रिया । उसका ही सबने पोषण किया है । योगज प्रत्यक्ष से ही कल्याण है । केवल तर्क से नहीं । ऐसा दर्शनों का अभिप्राय है ।

छह दर्शनों में से चार दर्शनों में योग का विधान उपरिलिखित पृष्ठों में निर्दिष्ट है । योग दर्शन में तो योग ही योग वर्णित है जिसका विस्तृत व्यौरा स्वामी जी की अज्ञातजीवनी में स्थानस्थान पर उल्लिखित है इस प्रकार योग की प्रक्रिया तथा महिमा का पाँचों दर्शनों में गुणगान हुआ है ।

श्रीमद्भागवत में योग-साधना

स्कन्ध ११

वासे बहूनां कलहो भवेद् वार्ता द्वयोरपि ।
एक एव चरेत्तस्मात् कुमार्यां इव कंकणः ।१०।
मन एकत्र संयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासनः ।
वैराग्याभ्यास योगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ।११।
तस्मिन् मनो लब्धपदं यदेतत्,
छनैश्शनैर्मुंचति कर्म रेणून् ।
सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च,
विधूय निर्वाणमुपैत्यनिन्धनम् ।१२।
तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो, न वेद किंचिद् बहिरन्तरं वा ।
यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्तमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे
। १३ ।

एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ।
अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ।१४।

गृहारम्भोऽतिदुःखाय, विफलश्चाध्रुवात्मनः ।
सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ।।१५।।

—अध्याय ९

अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचयः ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ।३३।

शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धातिथ्यं मदर्चनम् ।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ।३४।

एते यमाः सनियमाः उभये द्वादश स्मृताः ।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ।३५।

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः ।
तितिक्षा दुःखसम्मर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ।३६।

दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ।
स्वभाव-विजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ।३७।

ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्त्तिता ।
कर्मस्वसंगमः शौचं, त्यागः सन्न्यास उच्यते ।३८।

धर्म दृष्टं धनं नृणाम्, यज्ञोऽहं भगवत्तमः ।
दक्षिणा ज्ञानसन्देशः, प्राणायामः परं बलम् ।३९।

भगो म ऐश्वरो भावो, लाभो मद्भक्तिरुत्तमा ।
विद्यात्मनि भिदा बोधो, जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ।४०।

किं वर्णितेन बहुना लक्षण गुणदोषयोः ।
गुण-दोष दृष्टिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ।४५।

सम आसन आसीनः, समकायो यथासुखम् ।
हस्तावुत्संग आधाय, स्वनासाग्रकृतेक्षण ।३२।

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं, पूरक-कुम्भक-रेचकैः ।
विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ।३३।

हृद्यविच्छिन्नमोंकारं, घण्टानादं बिसोर्णवत् ।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ, पुनः संवेशयेत् स्वरम् ।३४।

एवं प्रणवसंयुक्तं, प्राणमेव समभ्यसेत् ।
दशकृत्वस्त्रिषवणं, मासादर्वाग् जितानिलः ।३५।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो, मनसाकृष्य तन्मनः ।
बुद्ध्या सारथिना धीरः, प्रणयेन्मयि सर्वतः ।४२।

तत्सर्वव्यापकं चित्तम्, आकृष्यैकत्र धारयेत् ।
नान्यानि चिन्तयेद् भूयः, सुस्मितं भावयेन्मुखम् ।४३।

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो,न किञ्चिद पिचिन्तयेत् ।४४।

एवं समाहितमतिः, मामेवात्मनात्मनि ।
विचष्टे मयि सर्वात्मन्, ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ।४५।

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण, युञ्जतो योगिनो मनः
संयास्यत्याशु निर्वाणं, द्रव्यज्ञान-क्रिया भ्रमः ।४६।

अध्याय १४

पंचदशोऽध्यायः

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ।१।

सिद्ध योऽष्टादश प्रोक्ता, धारणायोगपारगैः ।
तासामष्टौ मत्प्रधाना, दशैव गुणहेतवः ।३।

अणिमा, महिमा, मूर्तेर्लघिमा, प्राप्तिरिन्द्रियैः ।
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु, शक्तिप्रेरणमीशिता ।४।

गुणेष्वसंगो वशिता, यत्कामस्तदवस्यति
एता मे सिद्धयः सौम्य, अष्टावौत्पत्तिका मताः ।५।

अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्, दूरश्रवण दर्शनम् ।
मनोजवः कामरूपं, परकायप्रवेशनम् ।६।

स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ।
यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाप्रतिहता गतिः ।७।

त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां, प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ।८।

एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता, योग धारण सिद्धयः ।
यया धारणया या स्याद्, यथा वा स्यान्निबोधमे ।९।

भूतसूक्ष्मात्मनि मयि, तन्मात्रं धारयेन्मनः ।
अणिमानमवाप्नोति, तन्मात्रोपासको मम ।१०।

महत्यात्मन्मयि परे, यथासंस्थं मनो दधत् ।
महिमानमवाप्नोति, भूतानां च पृथक् पृथक् ।११।

परमाणुमये चित्तं, भूतानां मयि रञ्जयन् ।
कालसूक्ष्मार्थतां योगी, लघिमानमवाप्नुयात् ।१२।

धारयन् मय्यंहतत्त्वे, मनो वैकारिकेऽखिलम् ।
सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं, प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ।१३।

महत्यात्मनि यः सूत्रे, धारयेन्मयि मानसम् ।
प्राकाम्यं पारमेष्ट्यं मे, विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ।१४।

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत् कालविग्रहे ।
स ईशित्वमाप्नोति, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ चोदनम् ।१५।

नारायणे तुरीयाख्ये, भगवच्छब्दशब्दिते ।
मनो मय्यादधद् योगी, मद्धर्मा वशितामियात् ।१६।
निर्गुणे मयि ब्रह्मणि, धारयन् विशदं मनः ।
परमानन्दमाप्नोति, यत्र कामोऽवसीयते ।१७।
मय्याकाशात्मनि प्राणे, मनसा घोषमुद्वहन् ।
तन्नोपलब्धा भूतानां, हंसो वाचः शृणोत्यसौ ।१९।
चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य, त्वष्टारमपि चक्षुषि ।
मां तत्र मनसा ध्यायन्, विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ।२०।
परकायं विशन् सिद्धः, आत्मानं तत्र भावयेत् ।
पिण्डं हित्वा विशेत् प्राणो, वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ।२३।
मद्भक्तया शुद्ध-सत्त्वस्य, योगिनो धारणाविदः ।
तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ।२८।
जितेन्द्रियस्य दान्तस्य, जितश्वासात्मनो मुनेः ।
मद्धारणां धारयतः, का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ।३२।
अन्तरायान् वदन्त्येता, युञ्जतो योगमुत्तमम् ।
मया सम्पद्यमानस्य, कालक्षपणहेतवः ।३३।
जन्मौषधि तपो मन्त्रैयविती हि सिद्धयः ।
योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं वजेत् ।३४।

अध्याय १५

समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं, दानादिभिः किं वदतस्य कृत्यम्
असंयतं यस्य मनो विनश्यद्,दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः?।४७।

श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ११ अध्याय २३।।

बहुतों के रहने पर कलह होता है। दो में भी बातचीत होती है। इसलिये योगाभ्यासी एकला ही रहता है। जैसे कुमारी एक ही कंकण-कड़ा पहनती है, वह खड़खड़ाता नहीं ।।१०।।

मन को एकान्त देश में साधे। प्राणगति को वश में करें। स्थिर आसन हो। आसन पर पूर्ण विजयलाभ करें। वैराग्य और अभ्यास के योग से मन को सावधानी से वश में करें ॥११॥

भगवान् में मन के स्थिर हो जाने पर मन शनैः शनैः कर्मों की धूल को—भोगों को छोड़ देता है। उसके भोग समाप्त हो जाते हैं। सत्त्व गुण के बढ़ने पर रजोगुण और तमोगुण दूर हटाकर, प्रभावहीन करके ईंधन-रहित अग्नि के समान मन मर जाता है। अक्रिय हो जाता है। लय को प्राप्त हो जाता है॥१२॥

उस समय आत्म तत्त्व में चित्त का निरोध करके अन्दर या बाहर की किसी बात का भी भान नहीं होता है। जैसे बाण बनाने वाला तन्मयता के कारण सवारी के साथ जाने वाले राजा को भी नहीं जानता है। पास में होते हुए को भी नहीं देख पाता है ॥१३॥

योगाभ्यासी मुनि अकेला रहे। स्थान-मकान न बनाये। सावधान हो, किसी गुफा में आसन जमाये। उसकी योगचर्या को भी कोई जान न पाये। अल्पभाषी रहे। एकाकी रहे ॥१४॥

घर का बनाना अत्यन्त दुःख का कारण होता है। चञ्चल स्वभाव से वह विफल रह जाता है। योगी सांप की तरह दूसरे के घर में घुस कर सुख पाता है ॥१५॥ अध्याय ९

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंग, संकोच, लज्जा, अपरिग्रह, भगवान् पर भरोसा, ब्रह्मचर्य, मौन, धीरता, क्षमा, अभय, शौच, जप, तपः, हवन, श्रद्धा, आतिथ्य, भगवान् का अर्चन-ध्यान, तीर्थ भ्रमण, परोपकारेच्छा, सन्तोष, आचार्य के समीप रहना, यह नियमों सहित यम हैं। दोनों १२-१२ हैं। तात! यदि पुरुष इनका परिपालन करे तो यही कामधुक् हैं। ॥३३-३४-३५॥

बुद्धि की आत्म तत्त्व में निष्ठा शम है। इन्द्रियों पर काबू पाना संयम है। दुःखों का सहन करना तितिक्षा है। जिह्वा और उपस्थ को जीतना, स्वाद और काम पर विजय पाना धृति है ॥३६॥

किसी को दंड न देना सबसे बड़ा दान है। कामनाओं का त्याग तप है। अपने मनोभाव को जीतना बहादुरी है। सबको समान भाव से देखना सत्य है ॥३७॥ कवियों ने सच्ची वाणी को ऋत कहा है। कर्मों में न फंसना शौच है। सब छोड़ना त्याग हैं ॥३८॥ धर्म ही मनुष्यों का

यथेष्ट धन है। भगवान् ही यज्ञ है, अर्थात् भगवान् का भजन ही यज्ञ है। ज्ञान का सन्देश ही दक्षिणा है। भजन के द्वारा विवेक प्राप्त करें। प्राणायाम ही परम बल है ॥३९॥ सदा ईश्वर भाव में रत रहना ही ऐश्वर्य है। भगवान् की उत्तम भक्ति ही महा लाभ है। आत्मा को प्रकृति से अलग जान लेना बोध है। अकर्म से दूर रहना जुगुप्सा है ॥४०॥ गुण-दोष का कहां तक लक्षण बताया जाए, गुणों-दोषों को देखते रहना ही दोष है। दोनों से अलग रहना ही गुण है ॥४५॥

समतल पर आसन जमाये। सुखपूर्वक काया को सम रखे। दोनों हाथों को गोद में रखे। अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखे। कुछ दिखाई न दे ।३२। प्राण के मार्ग को शोधे। इसका उपाय पूरक, कुम्भक और रेचक है। रेचक, कुम्भक और पूरक के विपरीत क्रम से भी जितेन्द्रिय हो अभ्यास करे ॥३३॥ हृदय में अटूट तार से 'ओं' का जाप करे। घण्टानाद के समान उसी में रम जाये। कमल नाल के तन्तु के समान उसमें लगा रहे। घण्टे की झंकार के समान 'ओं' की तार बनी रहे। प्राण के साथ भी 'ओं' को चलाये सांस सांस में 'ओं' जपे ॥३४॥ प्राण से मिलाकर 'ओं' जाप का अभ्यास करे। दिन में तीन बार दस-दस ओंकार सहित प्राणायाम करे। एक मास में प्राण वश में हो जाता है ॥३५॥

इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषय से हटाकर मन में लय करदे। प्रत्याहार सिद्ध होने पर धीर योगाभ्यासी बुद्धि सारथि के द्वारा भगवद्भाव में शब्द छोड़ भागवत ज्ञान में सर्वथा लीन हो जाये ॥४२॥ सब में जाने वाले इस सर्व व्यापक से चित्त को खेंचकर एक स्थान पर ठहराये। फिर अन्य कुछ चिन्तन न करे। मुख पर सदा मुस्कान रहे ॥४३॥ मन के स्थिर हो जाने पर आकाशतत्त्व में चित्त को धारण करे। उसको भी छोड़कर आत्म तत्त्व में लगे, अन्य कुछ भी न सोचे ॥४४॥

इस प्रकार धारणा के उपरान्त समाहित मन, समाहित बुद्धि हो आत्मा में परमात्मा का भान करे। ज्योति में ज्योति व्याप्त हो रही है ॥४५॥

इस प्रकार तीव्रातितीव्र ध्यान में मग्न योगी का मन निर्वाण को—प्रलय को प्राप्त हो जाता है। द्रव्य, ज्ञान और क्रियाओं की भ्रान्ति भी समाप्त हो जाती है ॥४६॥

—११ स्कन्ध —१४ अध्याय

१५ वां अध्याय—योग में लगे जितेन्द्रिय और श्वास पर वश पाने

वाले योगी को सिद्धियां उपस्थित होती हैं ॥१॥ सिद्धियां १८ कहीं हैं। धारणायोग में पारंगत योगियों ने यह कहा है। उनमें आठ तो आत्म-तत्त्व ज्ञान प्राप्ति से होती हैं दस सिद्धियों का कारण त्रिगुणवशित्व है ॥३॥ (१)अणिमा, (२)महिमा, (३)मूर्ति की लघिमा, (४)इन्द्रियों से सूक्ष्म, व्यवहित विप्रकृष्ट की प्राप्ति, (५)सुनी देखी का यथेच्छ लाभ, (६) शक्ति को प्रेरित करना ईशिता सिद्धि है ॥४॥ (७)त्रिगुणों में न फंसना वशिता सिद्धि है। (८)इच्छा का व्याघात न होना कामावसायित्व सिद्धि है। सोम्य! यह आठ सिद्धियां योग-सामर्थ्य से होती हैं ॥५॥

इस देह में उद्वेगों का न होना, दूर का सुनना, दूर-दर्शन, मन के समान वेगवान्, सुन्दर कामदेव सा रूप, दूसरे के मृत शरीर में प्रवेश ॥६॥ इच्छा-मृत्यु, पाँचों देव सूक्ष्म भूतों का सम्मिश्रण, सृष्टि रचना का दर्शन, संकल्प सिद्धि, राजाओं के समान सर्वत्र स्वतन्त्रता से पहुंचना ॥७॥ तीनों काल को जानना, द्वन्द्वों के प्रभाव से रहित होना, पर चित्त का ज्ञान, अग्नि, सूर्य, जल, विष आदि के प्रभाव को रोकना, उनसे पराजित न होना अर्थात् भूतजयी होना ॥८॥ योग धारणा की इन शक्तियों को नाम लेकर बता दिया है। जो जिस धारणा से होती है, जिस प्रकार होती है उसे भी समझ लो ॥९॥ सूक्ष्म भूतों में, आत्मा में और परमात्मा में तन्मय होकर मन को संयत करें, तो अणिमा सिद्धि प्राप्त होती है। ये योगी तन्मात्रों पर संयम का प्रयोग करते हैं ॥१०॥ महान् आत्मा परमात्मा में संस्थान पर संयम के द्वारा जो मन को धारण करते हैं उन्हें महिमा नाम की सिद्धि प्राप्त होती है। पञ्चभूतों पर संयम का प्रयोग करने से भी महिमा सिद्धि प्राप्त होती है ॥११॥

भूतों के परमाणु में चित्त के संयम धारण द्वारा, काल की सूक्ष्मता के प्रयोजन से 'लघिमा' सिद्धि को प्राप्त करता है ॥१२॥ मनस्तत्त्व के विकार अहंकार तत्त्व में निखिल इन्द्रियों की सत्ता पर संयम प्रयोग करने से 'प्राप्ति' नाम की सिद्धि प्राप्त होती है ॥१३॥ सूत्र सम व्याप्त महत्तत्त्व संयम का प्रयोग कर मन को धारण करे तो 'प्राकाम्य' सिद्धि को प्राप्त करता है जिससे ब्रह्म रचित सब पदार्थों को अव्यक्त सृष्टि से प्राप्त कर सकता है ॥१४॥ व्यापक काल में संयम का प्रयोग करने से 'ईशित्व' नामक सिद्धि प्राप्त होती है। जिससे आत्मा और प्रकृति को प्रेरित कर सकता है ॥१५॥ अमात्र भगवान् के चतुर्थ पाद में योगी 'संयम' का प्रयोग करने से 'वशिता' नाम की सिद्धि को प्राप्त करता है ॥१६॥

निर्गुण, त्रिगुण से पृथक् निष्कल पर ब्रह्म में जो संयम का प्रयोग करता है वह परम आनन्द को प्राप्त करता है, जिससे सब कामनाओं का क्षय हो जाता है ॥१७॥ आकाश की तन्मात्रा के सम्बन्ध में संयम करने वाला हंस योगी सब प्राणियों की बोली समझ लेता है ॥१९॥ सूर्य और चक्षु में संयम का प्रयोग करके योगी सारे विश्व को देखता है ॥२०॥ सिद्ध योगी पर काया प्रवेश के समय, पर शरीर में अपने आत्मा की प्रवेश की धारणा कर, अपने शरीर को छोड़कर प्राणवायु सहित पर मृत शरीर में भौंरे के समान प्रवेश कर जाता है ॥२३॥

परमात्मा की भक्ति से शुद्ध सत्त्व वाले, संयम प्रयोग जानने वाले की बुद्धि त्रिकाल की जानने वाली हो जाती है। जन्म-मृत्यु को भी जानती है ॥२८॥ जितेन्द्रिय, मन का दमन करने वाले, श्वास-प्रश्वासजयी प्रभु भजन करने वाले योगी को कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है ॥३२॥ उत्तम योग साधक के लिए सिद्धियाँ भी पीछे विघ्न हो जाती हैं। प्रभु को प्राप्त करने वाले के लिए तो यह समयनाश ही है ॥३३॥

जन्म से, औषधि से, तप से, मन्त्र से जितनी भी सिद्धियां हैं, योग से उन सब को प्राप्त कर लेता है। पर जन्म आदि से प्राप्त होने वाली सिद्धियों से योग को प्राप्त नहीं होता है ॥३४॥ अध्याय १५

जिसका मन समाहित हो गया, प्रशान्त हो गया, फिर बताओ दान आदि से उसको क्या मिलेगा ? जिसका मन वश में नहीं, चंचलता से नष्ट हो रहा है, फिर दान आदि से भी उसे क्या मिलता है। अर्थात् योग साधना ही परम ध्येय है ॥४७॥ श्रीमद्भागवत,स्कन्ध११अध्याय २३॥

श्रीमद्भगवद्गीता में योग साधना

श्री गीता के अठारहों अध्यायों में गीता को योगशास्त्र कहा गया है। कर्म योग नहीं, ध्यान योग से ही अभिप्राय है। कर्म योग अर्थात् निष्काम कर्म तो एक ही अध्याय में कहा है। यह मनन और निदिध्यासन का विषय है। यहाँ केवल गीता की अत्यन्त संक्षिप्त योग साधन प्रक्रिया ही दिखानी अभीष्ट है। गीता तो सारी ही ध्यान योग से भरी है। योग-दर्शन का व्यास भाष्य और गीता दोनों ही तो भगवान् व्यास की रचना है। भेद कैसे हो सकता है :—

अर्जुन उवाच—चंचलं हि मन कृष्ण, प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् ।६-३४।

श्री भगवानुवाच-असंशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते ।६-३५।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ।६-३६।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।६-१०।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तमम् ।६-११।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये ।६-१२।

समं काय-शिरो-ग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रंस्वं दिशश्चानवलोकयन् ।६-१३।

प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्पर ।६-१४।

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियत-मानसः ।
शान्ति निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगछति ।६-१५।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्तमनश्नतः ।
न चास्ति स्वप्नशीलस्य, जागतो नैव चार्जुन।६-१६।

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा ।६-१७।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यः युक्त इत्युच्यते तदा ।६-१८।

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य, युंजतो योगमात्मनः ।६-१९।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ।६।२०।
युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्म संस्पर्शम् अत्यन्तं सुखमश्नुते ।६।२८।
तपस्विभ्योऽधिको योगी,ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी,तस्माद्योगी भवार्जुन ।६।४६।

अर्जुन ने भगवान् से प्रश्न किया—"भगवन् ! मन बड़ा चंचल है। प्रबल है। शक्ति सम्पन्न मजबूत है। उसको वश में करना ऐसा ही है, जैसे वायु को बान्धना ६। ३४॥

श्री भगवान् बोले—"महाबाहो ! निस्सन्देह है। चंचल मन का निग्रह कठिन है। पर हे कुन्ति-पुत्र ! अभ्यास और वैराग्य से यह वश में आता है॥३५॥ असंयमी व्यक्ति योग को प्राप्त नहीं कर सकता, यह तो मैं मानता हूं। तू असंयमी नहीं। वशी है। यत्न करने पर उपायों से वशी मन को वश में ला सकता है॥३६॥ योगी सदा एकान्त में बैठकर मन को वश में लावे। अकेला रहे। चित्त को वश में रखे। किसी की आकांक्षा न करे। असंग्रही हो॥६-१०॥ पवित्र स्थान में अपना आसन जमा कर स्थिर बैठे। न बहुत ऊंचे पर बैठे, न बहुत नीचे। कपड़ा, मृगचर्म, कुशायें ऊपर-ऊपर बिछाये।११। आसन पर जमने पर मन को एकाग्र करे। मन और इन्द्रियों की क्रियाओं को वैराग्य से रोके। आसन पर बैठकर आत्मा के मल धोने के लिए योगाभ्यास करे॥१२॥ शरीर, सिर और गर्दन को एक सीध में सम रखे। अचल और स्थिर रहे। अपनी नासिका के अग्र भाग पर शून्य दृष्टि रखे। दिशाओं को सर्वथा न देखे॥१३॥ आत्मा प्रशान्त रहे। निर्भय हो बैठे। प्रभु की गोद में कैसा भय! ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। मन पर संयम रखे। भगवान् का ही ध्यान रहे। योग में लगे॥१४॥ मन पर नियमन करने वाला योगी सदा समाहित रहे। परमात्मा में स्थित हो। परम शान्ति, मुक्ति सी शान्ति को पावे॥१५॥ अधिक खाने वाला योग नहीं कर सकता। आरम्भ काल में सर्वथा न खाने वाला भी योग नहीं कर सकता अतिशयन करने वाला भी योग नहीं कर सकता। विषयों में जागने वाले का भी योग नहीं है॥१६॥ योगी का सा आहार करने वाला, योगी की सी चेष्टाएं करने वाला, योगी की सी स्वप्न और बोध अवस्था वाला योगी ही क्लेशों-दुःखों का

नाश करता है ॥१७॥ जब भली प्रकार नियम में लाया गया चित्त आत्मा में स्थिर हो जाता है तब सब अन्य इच्छाओं को छोड़ देता है, तब योगी नाम पाता है ॥१८॥ जैसे निवात में रखे दीपक की लौ नहीं हिलती, ऐसे हीं योगी का चित्त भी निश्चल होता है। ऐसा योगी योग में आत्मा को पाता है ॥१९॥ जब योगाभ्यास से चित्त निरुद्ध हो जाता है, और आत्मा अपने आप को अपने आप ही, बिना चित के देखता है। तब आत्म में तुष्ट हो जाता है। स्वस्थ हो जाता है ॥२०॥ सदा इस प्रकार अभ्यास करने वाले योगी के कल्मष,कर्म, अविद्यादि क्लेश ध्वस्त हो जाते हैं, सहज भाव से तब ब्रह्मानन्द के परमानन्द को प्राप्त करता है ॥२८॥

तपस्वियों से योगी अधिक है। ज्ञानियों से भी योगी अधिक है। निष्काम कर्म करने वालों से भी योगी अधिक है। इसलिए, हे अर्जुन ! योगी बन ॥६. ४६॥

आत्मचरित्र की प्रामाणिकता

१. **इस आत्मचरित्र का उल्लेख**—सन् १८८६ में अर्थात् ऋषि के कैवल्य के लगभग केवल दो वर्ष पीछे ब्रह्म समाज के प्रचारक नगेन्द्र नाथ चटर्जी ने-'महात्मा दयानन्देर संक्षिप्त जीवनी' नामक छोटा-सा ग्रन्थ प्रकाशित किया था। वह बंग भाषा में और सम्भवतः आर्य भाषा की दृष्टि से भी सर्वप्रथम जीवनी है। बंगाब्द १२९३ में श्री मनिमोहन रक्षित द्वारा कलकत्ता २१०।१ कार्नवालिस स्ट्रीट के विक्टोरिया प्रेस में मुद्रित है। आजकल अप्राप्य है। केवल एक प्रति चैतन्य लायब्रेरी कलकत्ता में है। उपसंहार में लिखते हैं—

"दयानन्द सरस्वती यदि यूरोप या अमरीका के आदमी होते तो शायद उनके परलोक गमन के एक सप्ताह में ही सुविस्तृत जीवन वृतान्त जन साधारण के समक्ष आ जाता। उन्होंने कई वर्ष हुए इहलोक परित्याग किया था। इस हतभाग्य देश में आज तक भी उनका जीवन-पुस्तक नहीं निकला। सौभाग्य की बात है—**दयानन्द अपने जीवन के बारे में लिखा-कर चले गए। नहीं तो उनके बारे में कुछ भी नहीं मिलता।**'

२. **आत्मचरित्र अब तक क्यों नहीं मिला**—इसी आत्मचरित्र को स्वामी जी लिखा गये थे और साथ ही जीवनकाल में मुद्रित न करने को कह गए थे। इस आत्मचरित्र को पढ़कर प्रकाशित न कराने का कारण समजना कठिन नहीं :—स्वामी जी अपनी योगसिद्धियों का खुला प्रचार नहीं करना चाहते थे।

३ **अंग्रेजी सरकार की कड़ी निगरानी**—सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य समर में ऋषिवर ने क्रान्ति की पूरी भूमिका निभाई।

अंग्रेज सरकार के विद्रोही होने के नाते उनका यह रहस्य खुलना उनके तथा उनके कार्य के लिए घातक सिद्ध होता। इतना गुप्त रहने पर भी अंग्रेजी सरकार को उन पर पूरा संदेह हो गया था।

सन् १८७२-७३ में ऋषि कलकत्ता में थे। लाट पादरी प्रायः उनके भाषणों में उपस्थित रहते और प्रधान बनते थे। आलोचना के समय स्वामी जी कह दिया करते थे—"अंग्रेजी राज्य में मुझे विचारों के प्रकट करने में किसी प्रकार का भय नहीं है।" पादरी महोदय ने प्रभावित हो नार्थ ब्रुक को सुझाव दिया—'महात्मा बड़े काम का व्यक्ति है, अपने पक्ष में करने से लाभ पहुँचेगा'।

निम्न प्रामाणिक व रेकार्ड की गई भेंट हुई :—

वायसराय ने स्वामी जी से पूछा—'पण्डित दयानन्द! मुझे सूचना मिली है कि आपके द्वारा दूसरे मत-मतान्तरों व धर्मों की कड़ी आलोचना, उनके हृदय में क्षोभ उत्पन्न करती है। विशेषतः मुस्लिम और ईसाई जनता के। क्या आप अपने शत्रुओं से किसी प्रकार का खतरा अनुभव करते हैं। अर्थात् क्या आप सरकार से अपनी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध चाहते हैं?

स्वामी दयानन्द—'मुझे अपने विचारों के प्रचार करने की अंग्रेजी राज्य में पूरी स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगत रूप से किसी प्रकार का खतरा नहीं'।

वायसराय—'यदि ऐसा ही है तो क्या आप अपने देश में अंग्रेजी शासन द्वारा उपलब्ध उपकारों का भी वर्णन किया करेंगे? और अपने व्याख्यानों के प्रारम्भ में जो-ईश प्रार्थना आप किया करते हैं उसमें देश पर अखण्ड अंग्रेजी राज्य के लिए भी प्रार्थना करेंगे'?

स्वामी दयानन्द—'मैं ऐसी किसी बात को मानने में असमर्थ हूं, क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों को अबाध राजनीतिक उन्नति और संसार के राज्यों में समानता का दर्जा पाने के लिए शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। ईश्वर से नित्य सायं-प्रातः उनकी अपार कृपा से इस देश की विदेशियों की दासता से मुक्ति की ही प्रार्थना करता हूं'।

सुनकर वायसराय घबरा गए। वार्ता बन्द कर दी। लार्ड नार्थ ब्रुक ने यह घटना अपनी साप्ताहिक डायरी में लन्डन भेजी, इंडिया आफिस में। मलका सरकार के सैक्रेटरी आफ स्टेट को लिखा कि, उसने इस बागी फकीर की कड़ी निगरानी करने के लिए गुप्तचर नियुक्त करने के आदेश दे दिए हैं।'

(दीवान अलखधारी अम्बाला निवासी के सौजन्य से प्राप्त लेख के आधार पर)

सरकार ने जोधपुर में षड्यन्त्र द्वारा महर्षि को हमसे सदा के लिए पृथक कर दिया—देखो म. दत्त. जी. च. पृ. ३४०—'अलीमर्दान खां का असद्भाव' शीर्षक।

४. **५७ के क्रांतिकारियों से सम्बन्ध**—नाना साहब की टंकारा स्थित समाधि यह सिद्ध करती है कि नाना साहब और उनके परिवार के साथ ऋषि का पूरा गुरु शिष्य का सम्बन्ध था। देखो पृष्ठ ११७, ११५

—The Times of India, Sunday, May 25, 1969

—नवजीवन, ३१ जुलाई अंक में शिवशंकर मिश्र का लेख

५. **सत्यार्थ प्रकाश में नाना के महल के ध्वंस का उल्लेख**—नाना साहब के बिठूर स्थित महल के ध्वंस की घटना का सत्यार्थ प्रकाश के ११ वें समुल्लास में उल्लेख इस धारणा की निर्णायक पुष्टि करता है।

देखो पृ० १०३

६. **अंग्रेजी इतिहास की साक्षी**—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री श्री ओम प्रकाश जी त्यागी (भूतपूर्व संसद् सदस्य) ने भी बताया कि किसी अंग्रेजी इतिहास में पढ़ा है कि—"एक लम्बे-चौड़े शरीर वाला साधु नर्मदा के किनारे साधु सन्न्यासियों का संगठन कर रहा था।" सन्न्यासी इसका प्रमाण भी यथावसर निकाल देंगे।

सन् ५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में सशरीर भाग लेने के उचित प्रमाण यथावसर आगे पढ़ने को मिलेंगे। देखो पृष्ठ १०३ से १२५ तक

७. वह योगसिद्धियों से प्रभावित कर वैदिक धर्म का प्रचार नहीं चाहते थे, अपितु वेद के ईश्वर कृति होने से तथा अकाट्य तर्कों के बल पर ही जनता की वैदिक धर्म में आस्था उत्पन्न करना चाहते थे।

इत्यादि जीवनी को प्रकाशित न करने के कथन में अनेक कारण हैं।

थियोसोफिस्ट के आत्म चरित्र का प्रमाण—

I felt a strong desire to visit the surrounding mountains, with their eternal snow and glaciers, inquest of true ascetics, I had heard of but as yet had never met. I was determined, come what might. to as certain whether some of them did or did not live there as rumoured.

—मैं प्रबल इच्छा का अनुभव करता था। चारों ओर के पहाड़ों पर जाने की जिन पर अनादि काल से हिम पड़ी है, और हिम की चट्टानें हैं। वहाँ मैं योगियों की खोज करूंगा। जिनके विषय में सुना है पर आज तक मिले नहीं। मैंने दृढ़ सङ्कल्प किया, कोई भी कैसा ही संकट आया, निश्चय करूंगा, उनमें से कोई हैं या नहीं, जैसा कि जनवाद है।

ऋषि का दृढ़ संकल्प व्यर्थ नहीं जा सकता। उन्होंने काश्मीर से नेपाल तक सारे हिमालय की पूर्णतः छान-बीन की।

५. **आत्मचरित्र की ऐतिहासिकता और भौगोलिकता**—इस दृष्टि से अध्ययन करते हुए, तीर्थों और हिमालय की यात्रा करते हुये मैं इस निश्चित परिणाम पर पहुँचा हूं कि ऋषि-उल्लिखित हिमालय के स्थानों में आज तक किसी भी जीवनी लेखक ने उन तीर्थ स्थानों को जाकर नहीं देखा। न स्वामी सत्यानन्द जी हिमालय पर गये, न बाबू देवेन्द्रनाथ जी और पं० लेखराम जी आदि भी नहीं ही गये। पं० लेखराम जी ने तो थियोसोफिस्ट के मिले हुए हिन्दी के पृष्ठों अथवा अनुवादों को ही मिश्रित कर पिछ दिया। श्री देवेन्द्र बाबू और स्वामी सत्यानन्द जी ने भी अपनी साहित्यिक कल्पना के आधार पर यात्रा का कष्टबाहुल्य दिखाने मात्र के लिए आलंकारिक वर्णन कर दिया है।

६. **आज तक की ऋषि जीवनियों में उल्लेख—मग्नम्**—श्री पं० लेखराम जी, श्री पं० भगवद्दत जी एवं श्री स्व० सत्यानन्द जी तीनों ने ही स्वा०.बद्री नारायण से अलखनन्दा की १२ घण्टे की यात्रा में 'मग्नम्' स्थान का भी उल्लेख किया है। मग्नम् बद्रीनारायण से १३१ मील पर है तथा बद्रीनारायण और कैलास के मध्य में स्थित है। इसका विस्तृत लेखा आगे यथा प्रकरण पढ़िये।

७. **त्रियुगी नारायण**—थियोसोफिस्ट आत्मचरित्र के हिन्दी अनुवाद में लिखा है, "शिवपुरी से केदारघाट होता हुआ गुप्तकाशी आया। वहाँ कुछ दिन ठहरकर त्रियुगी नारायण, गौरी कुण्ड और भीम गुफा प्रभृति के दर्शन करके मैं फिर केदारघाट चला आया। (केदार घाट से) लौटते हुए तुंगनाथ की चोटी पर चढ़ गया।" इत्यादि।

यहाँ पर केदार घाट से घूमते-घामते त्रियुगी नारायण आए गए और फिर एकदम तुंगनाथ की चोटी का उल्लेख किया है।

त्रियुगी नारायण—"गौरी कुण्ड से चार मील—गंगोत्री से पंवाली डांडा पार होकर आने वाले रास्ते पर यह त्रियुगी नारायण गाँव है। सत्य युग में हिमालय पुत्री गौरी का विवाह यहाँ शिवजी से हुआ था। तब से विवाह के होम की आग आज तक जल रही है। यहाँ नहाने के चार कुण्ड हैं। जिनमें बहुत से निर्विष सर्प रहते हैं।"

महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन लिखित 'हिमालय-परिचय' पृ० ३३६.

—"पर्वतशिखर पर भगवान् नारायण का मन्दिर है। नारायण भू देवी तथा लक्ष्मी देवी के साथ विराजमान हैं। एक सरस्वती गंगा की धारा यहाँ है जिससे चार कुण्ड बनाए हुए हैं। ब्रह्म कुण्ड, रुद्र कुण्ड, विष्णु कुण्ड और सरस्वती कुण्ड। मन्दिर में अखण्ड धूनि जलती है। यात्री धूनि में हवन करते हैं। कहते हैं यहाँ शिव पार्वती का विवाह हुआ था।"

इसी बात को इस आत्मचरित्र (अज्ञात जीवनी) में इस प्रकार लिखा है :— 'गंगोत्री से त्रियुगी नारायण आधा योजन की दूरी पर है। वहाँ से आगे अगस्त्य मुनि और गुप्तकाशी है।" यह कोई पर्वत मार्ग मालूम होता है क्योंकि "आजकल तो सड़क मार्ग से, त्रियुगी नारायण १२० मील की दूरी पर है।

—राहुल सांस्कृत्यायन के 'हिमालय-परिचय' से पृ० ३७०. इस आत्मचरित्र में इन चारों कुण्डों का भी उल्लेख है। "रुद्र कुण्ड में स्नान, विष्णु कुण्ड में मार्जन, ब्रह्मकुण्ड में आचमन तथा सरस्वती कुण्ड में तर्पण होता है।" कुण्डों को स्वच्छ रखने का कैसा अच्छा नियम है। इस आत्म चरित्र में वर्णित यात्रा ही शुद्ध है। लेखकों का मक्खी मार यात्रा वर्णन नहीं।

तुंगनाथ—तुंगनाथ त्रियुगी नारायण से यात्रा के मार्ग पर ७० मील की दूरी पर है। उसका भी पर्वतीय छोटा मार्ग है। गुप्तकाशी से डेढ़ मील नाला। नाला से सीधे ऊखी मठ जाते हैं। ऊखीमठ से तुंगनाथ चौदह मील है। १२०७१ फुट की ऊँचाई है। इसे चन्द्रशिला भी कहते हैं।

केदारघाट—थ्योसोफिस्ट-आत्मचरित्र में ऋषि केदारघाट से तुंग-नाथ पहुँचे हैं। कभी किसी ने विचारा केदारघाट किधर है? तुंगनाथ कितनी

दूर है ? कहाँ से कहाँ ऋषि गए होंगे ! केदारनाथ के पास कोई केदार घाट नहीं है। केदारनाथ में नदी ही नहीं घाट कहाँ से आएगा ? केवल साहित्यिक वर्णन से तो यात्रा की खोज नहीं हो सकती। श्री राहुल जी ने 'हिमालय परिचय' के ३४७वें पृ० पर लिखा है :—"बाड़ाहाट को उत्तरी काशी बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। पूर्व दक्षिण में गंगा जी का प्रवाह, उत्तर में असि गंगा, पश्चिम में वरुणा नदी, इससे पूर्व तरफ केदार घाट, दक्षिण तरफ मणिकर्णिका घाट, मध्य में विश्वेश्वर मन्दिर।" यह है वह केदारघाट जिसकी किसी ने भी आज तक खोज नहीं की।

८. **मानसोद्भेद तीर्थ**—बद्रीनारायण और माना के बीच में है। मानसरोवर का मार्ग इधर से होने से यह नाम पड़ा होगा। ऋषि मानसोद्भेदतीर्थ से ही कैलास गए थे।

देखो इस आत्मचरित्र का पृ० २२२। अन्यत्र किसी ने पूना प्रवचन को छोड़ कैलास-यात्रा की बात तक नहीं कही। पूना प्रवचन में कहा है—"महादेव कैलास के निवासी थे। कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदारखण्ड का है। **हम भी (ऋषिदयानन्द भी) इन सब स्थानों पर घूमे हुए हैं।**" इत्यादि।

—(उपदेश मंजरी—दशम व्याख्यान)

९. अलकापुरी—उपदेश मंजरी पृ० ११६ पर दशम व्याख्यान में लिखा है=—"जिस पहाड़ पर पुरानी अलकापुरी थी, उस पर भी मैं इस विचार से गया था कि एक बार ही अपना शरीर बर्फ में गलाकर संसार के धन्धों से निवृत्त हो जाऊँ।" पृ० १७१ पर "उपदेश मंजरी" में लिखा है—"बर्फ बहुत पड़ी थी, वहाँ बर्फ लगने से पैर में कुछ तकलीफ हो गई। हिमालय पर पहुँच कर विचार आया कि यहीं शरीर गला दूँ।"

यह घटना अलकापुरी की है। अलकापुरी अलकनन्दा के स्रोत से आगे है। देखो पृ० २६

इस अलकापुरी का परिचय न होने से देवेन्द्रबाबू ने तथा अन्यों ने इस प्रकार लिख दिया—"अलकनन्दा पार करने पर पैर सुन्न हो गए····· मरने की बात सोचकर में मन में कुछ घबराया। फिर तुरन्त ही मैंने सोचा ! मैं मरने की क्यों इच्छा करता हूं। क्या ज्ञानानुशीलन में रत रह कर ही जीवन का अन्त करना मेरे लिए जीवन का श्रेष्ठकर्त्तव्य नहीं है।" इत्यादि।

—म. द. जो. च. —पृ० ४७

१० **रामपुर**—रामपुर की स्थिति भी विचारणीय है। रामपुर ५ हैं। ४ के विषय में संशय है, कौन-से हैं। एक रामपुर बिहार में है, उसका तो प्रसंग नहीं है १. केदारनाथ वाला जो श्रीनगर, रानीबाग और अरकणी के बीच में है। २. एक ऊखी मठ और त्रियुगी नारायण के बीच में है। ३. काश्मीर में है। ४. रामपुर रियासत काशीपुर के पास है। गंगोत्तरी केदार और बद्रीनाथ पार्वतीय अवस्थिति से बहुत निकट हैं। मार्ग तीर्थों की दृष्टि से बनाये गये हैं। सीधे पहाड़ी मार्ग से सन्निकट प्रतीत होते हैं। ऋषि को केदार नाथ मध्य का स्थान अति रुचिकर था। २ नं० वाले राम पुर से ही तीनों धामों को पैदल मार्ग गया है। वहीं कहीं शिवपुरी एकांत स्थान पर्वत शिखर पर वे रहे। यह अगस्त्यमुनि गुफा के पास होनाचाहिए सन ५७ वाला रामपुर रियासत है, काशीपुर द्रोण सागर पर रहते समय जाना हुआ होगा। पर्वत यात्रा में तो यह तीन ही विचाराधीन हैं।

गौरी कुण्ड भी अनेक हैं। गंगोत्तरी के पास, त्रियुगी नारायण के पास और कैलाश के पास।

पाठक विचार करें कि सही गवेषणा के अभाव में घटना का कैसा उलट-पुलट अनर्थ हो जाता है। ऋषि का सुनाया आत्मचरित्र परम प्रामाणिक है।

देवेन्द्र बाबू ने महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र में लिखा है—भक्तों से बातचीत करते हुए ऋषि ने कहा, "मैं एक बार गंगोत्री से चलकर गंगा सागर तक और एक बार गंगोत्री से रामेश्वर तक गया था।" (पृ० ६२२)

ऋषि ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में जिन तीर्थों का खण्डन किया है, वहां अवश्य गये थे। विना देखे खण्डन की उनकी रीति नहीं।

कलकत्ते की काली, कामाक्षा देवी, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, कालियाकन्त, द्वारिकापुरी, सोमनाथ, रणछोड़ जी का मन्दिर, ज्वालामुखी, हिंगल, अमर नाथ, केदार, बद्री, नेपाल, तुंगनाथ, विन्ध्याचल, विन्ध्येश्वरी, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, गोवर्धन, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य।

सत्यार्थ प्रकाश १२ समु० यहाँ की भाषा भी वर्तमान कालिक है वर्णन सजीव है देखभाल कर लिखा है यही प्रमाणित होता है। यही सब इस आत्मचरित्र में है। आगे विस्तृत ऊहापोह पढ़िये।

११. **पं० दीन बन्धु शास्त्री का अध्यवसाय**—अपनी मधुरता, सौजन्यता एवं विद्वत्ता के प्रभाव से ब्रह्म समाज से सुसम्बन्ध बनाये। उनके

उत्सवों में गये व्याख्यान दिये। रवीन्द्र बाबू के शान्ति निकेतन में वेदकथा निरन्तर की। ४० वर्ष तक 'दयानन्द का पगला' बन कर खोज की। तब यह जीवन-रत्न हाथ लगा। जिसकी चर्चा और प्रतीक्षा बराबर वर्षों से हो रही थी।—आर्यसमाज के इतिहास में पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखते हैं:—"पं० दीनबन्धु शास्त्री ने उनकी डायरी के कुछ ऐसे अंश बंगला में 'दयानन्द प्रसंग' नाम से प्रकाशित किये हैं जिनसे बहुत महत्त्व-पूर्ण सूचनाएँ मिली हैं।" पृ० ७४

'बंगाल के आर्यसमाज के पं० दीनबन्धु जी शास्त्री को भी नवीन खोज का श्रेय देना चाहिए।'—पं० आत्मानन्द विद्यालंकार की अप्रकाशित सामग्री। पृ० ८५

आत्मचरित्र की खोज पर बधाई—श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर, श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति तथा परोपकारिणी सभा के मंत्री श्री हरविलास जी शारदा तथा तत्कालीन अन्य आर्य नेताओं ने श्री पं० दीनबन्धु जी की गवेषणा निरति एवं उपलब्धियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी तथा पं० जी को इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया था।

१३. अमर हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कलकत्ता में इस आत्मचरित्र के हस्त लेखों को खोज न निकालने पर बंगाल के आर्यों को आड़े हाथों लिया था। यह सब बातें कलकत्ता में प्रसिद्ध हैं।

१३. ऊपर के उद्धरणों एवं प्रतीकों से यह स्पष्ट है कि आत्मच-रित्र तथ्यपूर्ण है तथा उन उद्धारणों की व्याख्या है। जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। यह ३९ वर्ष की जीवनी प्रायः ऋषि की अवधूत अवस्था की तथा एकाकी विचरण की है. जिसका उल्लेख अन्यों से मिलना कठिन है। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि बंगाल के मूर्धन्य विद्वानों की प्रार्थना पर ऋषि ने अपनी यह जीवनी स्वयं सुनाई अतः यह जीवनी सर्वथा प्रामाणिक है।

ब्राह्मसमाज और आर्य समाज का संघर्ष

ब्राह्म समाज और आर्य समाज का संघर्ष ही ऋषि के जीवन चरित्र के प्रकाश में आने में बाधक रहा

(१) ऋषि दयानन्द ने ब्राह्मसमाज का पूरा खण्डन किया। वह उनकी जीवनी क्यों देते! देखो सत्यार्थप्रकाश—

प्रश्न—ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज तो सबसे अच्छे हैं?

उत्तर—.....वेद विद्या विहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्यों कर हो सकती है?.....ब्राह्म समाज के उद्देश्य की पुस्तक में साधुओं की संख्या में ईसा, मूसा, मोहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे हैं। किसी ऋषि, महर्षि का नाम भी नहीं लिखा है, ये उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं। —(सत्यार्थ प्रकाश—११ समु०)

(२) उधर ब्रह्मसमाजियों ने भी ऋषि का खण्डन और विरोध आरम्भ किया—

History of Brahma samaj—By Sivanatha Sharsri M.A. Published 1912 A. D.

"In the beginning of 1875—But there was coming in a short time a new rival and a fresh struggle into the field. Pandit Dayananda Saraswati the well krown founder of the Arya Samaj. paid his visit to Lahore in that year, and by his lecture and discussion meetings succeeded in rousing interest in his cause amongst the educated Punjabis.

The successful preaching of the founder of the Arya—Samaj, leading away many, who had been previously attending the Samaj (e. i, Brahma Samaj) meetings made services of Mr. Sen once more if possible.